धारा...49-ग्रंथांक...256

परम स्वतन्त्रता गीताञ्जली

(गद्य-पद्यमय)

-आचार्य कनकनन्दी

पुण्य स्मरण

आ. कनकनन्दी के आद्यगुरु आचार्य विमलसागर जी जन्म शताब्दी महोत्सव

स्वैच्छिक अर्थ सौजन्य (ज्ञानदानी)

1. सुश्री खुशी पुत्री श्री राजेश कुमार पुत्र श्री जीतमल जी जैन, ए-331, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा (राज.), मो. 9414884755
2. श्रीमती आशा देवी श्री खुशपालजी शाह, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा

ग्रन्थांक-256 प्रतियाँ-500
संस्करण-2016 मूल्य-81/- रु.

सम्पर्क सूत्र व प्राप्ति स्थान

आचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव द्वारा आशीर्वाद प्राप्त

(1) धर्म-दर्शन सेवा संस्थान

द्वारा-श्री छोटूलाल जी चित्तौड़ा

चन्द्रप्रभ दि. जैन मन्दिर, आयड़, आयड़ बस स्टॉप के पास,
उदयपुर (राज.)-313001/मो. 097832-16418

(2) डॉ. नारायणलाल कछारा

सचिव-धर्म-दर्शन सेवा संस्थान
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422/मो. 092144-60622
E-mail:nlkachhara@yahoo.com

विनय सम्पन्नता भाव से ओतप्रोत कनकनन्दी गुरुदेव

-श्रमणी आ. सुवत्सलमती

(चाल : बाबुल की दुआएँ लेती जा.....)

सौभाग्य से कनक गुरु मिले उनके चरणों में शरण मिले।
गुरुवर की देशना जब मिले मुक्ति पथ के द्वार खिले।। (ध्रुव)

सतपथ का गामी मैं बनूँ सद्धर्म पालक मैं बनूँ।
स्वात्मा पे श्रद्धा करके ही सम्यक् दृष्टि मैं बनूँ।
सद्गुरु से सम्यग्ज्ञान मिले सम्यक् चारित्र बोध मिले।। गुरुवर की...(1)

कनक गुरु का देखो वदन (मुख) मानो जैसे आनंद सदन।
यथा चंद्रमा ताप नशे कल्पवृक्ष दीनता नशे।
(पर) सद्गुरु दीनता अज्ञान नशे अनंत शक्ति उनसे मिले।। (2)

विनय तप तो महान् है जो मोह भंग तो करता है।
जिन आज्ञा का पालन हो दूजे श्रुत आराधना है।
जो सरल स्वभावी गुण अनुरागी उसे मोक्ष का द्वार मिले।। (3)

विनय वही कर सकता है जिसमें ऋजुता का भाव हो।
वह अष्ट मदों से दूर रहे मन में वात्सल्य भाव रहे।
अनुग्रह करने का हो इच्छुक उसमें ही विनय भाव मिले।। (4)

लौकिक विनय तो इस जग में, संसार वृद्धि का कारण है।
लोकोत्तर विनय करने से, भावों की विशुद्धि होती है।
आनंदमयी जीवन बनता मन में सातिशय तृप्ति मिले।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 14.01.2016 (मकर संक्रांति) मध्याह्न 1.30

आचार्यश्री कनकनन्दी से स्वाध्याय का प्रभाव (फल)

-आनंदी जैन, ग.पु.कॉ., सागवाड़ा

गुरु तुमसे पढ़ने का, स्वाध्याय ही बहाना है,
दुनिया वाले क्या जाने, ज्ञान ही मोक्ष का तराना है। गुरु तुमसे...

महावीर की 'ॐ' ध्वनि को, गणधर ने झेला था,

आचार्यों ने उस ध्वनि को, आगम बनाया था,
दुनिया वाले क्या जाने, ये आगम कितना पुराना है। गुरु तुमसे...

आगम में लिखी वाणी को, कनकसूरी ने ग्रंथों में बाँधा है,
ग्रंथों को लिख करके, विज्ञान को धर्म से साधा है,
दुनिया वाले क्या जाने, धर्म से विज्ञान का क्या नाता है। गुरु तुमसे...

गुरुवर के ग्रंथों में, सम्यक्ज्ञान समाया है,
आत्मकल्याण की युक्ति में, स्व-आत्म तत्त्व गहराया है,
दुनिया वाले क्या जाने, सम्यक्ज्ञान का मोक्ष से क्या नाता है। गुरु तुमसे...

अब तक मेंने, स्व-पर को ही 'मैं' माना था,
गुरुवाणी सुनकर अब, 'मैं' को आत्म तत्त्व जाना है,
दुनिया वाले क्या जाने, 'मैं' ही मोक्ष का साधन है। गुरु तुमसे...

भारत में ढूँढ़ा तुम्हें, विश्व में पाया है,
विश्व के धर्मग्रंथों में, गुरु का नाम पाया है,
दुनिया वाले सब जाने, ये गुरु कितने ज्ञानी है। गुरु तुमसे...

आचार्य कनकनन्दी जी गुरुदेव की विशेषताएँ

रचयित्री-आनंदी जैन

(तर्ज : तुझे सूरज कहूँ या चंदा, तुझे दीप कहूँ या तारा। मेरा.....)
तुम्हें अर्हन् कहूँ या सूरी, तुम्हें पाठक कहूँ या मुनि,
धर्म को विज्ञान से जोड़े, जग में कनकनन्दी।

विज्ञान को धर्म की कसौटी पर, निखार रहे है गुरुवर,
धर्म में व्याप्त मतभेद, मिटा रहे है सूरीवर,
संकीर्णवाद से ऊपर, सभी से न्यारे ऋषिवर।
धर्म को विज्ञान से जोड़े, जग में कनकनन्दी।

धर्म में फैली रूढ़ियाँ, तोड़ रहे है गुरुवर,
स्यादवाद अनेकांत धर्म, प्रसारित कर रहे है आचार्यवर,
कई भाषाओं के ज्ञानी, सभी धर्म तत्त्वों के ध्यानी।

धर्म को विज्ञान से जोड़े, जग में कनकनन्दी।

ग्रंथों को लिखकर गुरुवर, धर्म के मर्म को समझाते,
जो भी सम्पर्क में आते, अनादि धर्म को आचरते,
इसीलिए मैं (हम) भी गुरुचरण में, अपना उद्धार कर पाऊँ (पाएँ)
धर्म को विज्ञान से जोड़े, जग में कनकनन्दी।

वैश्विक गुरु श्री कनकनन्दी जी श्रीसंघ से एक भक्त/शिष्य की विनम्र प्रार्थना/निवेदन

निवेदनकर्त्री-ब्र. आशा देवी (संघस्थ)
प्रस्तुति सहायक-श्रमणी आ. सुवत्सलमती

(चाल : मेरे नैना सावन भादो.....)

वैश्विक गुरु कनकनन्दी!...दे दो इक चौमासाऽऽऽ हम सबकी शुभ आशाऽऽऽ
कॉलोनी में हो वासाऽऽऽ...(ध्रुव)...

निस्पृही निर्विकारी...अनाग्रही वीतरागी...
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि...से कर दी निवृत्ति...
निराडम्बर ध्यानी...
कितने पावन कितने त्यागी...ज्ञान की महिमा बखानी-2-वैश्विक...(1)

अंतरंग तप स्वाध्याय...निरंतर कराते हो...
देश-विदेश के ज्ञानी-ध्यानी...आपसे होते विज्ञानी...
ज्ञान प्रभावना भारी...
धर्म-विज्ञान समन्वय करके...आगम निगम बखानी-2-वैश्विक...(2)

दो हजार सोलह (2016) का...सीपुर में चौमासा...
पाँच चातुर्मास योगेन्द्रगिरी पर...बीस सीपुर क्षेत्र...
आगे आजीवन में...
इसीलिए हम करते निवेदन...दे दो इक चौमासा...
मम मन की है आशा...
पूरी हो अभिलाषा...2-वैश्विक...(3)

स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुवर

-आनंदी जैन, ग.पु.कॉ., सागवाड़ा

(तर्ज : आने से जिनके आये बहार.....)

ज्ञान पिपासु स्वाध्याय में आओ, कनक गुरु से ज्ञान पाओ,
स्वात्मा की ज्योत जलाऽऽऽ
स्व में रमण करोऽऽऽ कॉलोनी में गुरुवर आयेऽऽऽ
अभिनन्दन करोऽऽऽ

ज्ञान ज्योति गुरु की, विश्व में फैल रही है,
ग्रंथों के माध्यम से, धर्म ध्वजा फहरा रही है,
ज्ञानी गुरुवर, दीर्घायु हो, ऐसी कामना करते,
अभिनन्दन करोऽऽऽ

सरल स्वभावी गुरुवर, आत्मज्ञान तत्त्वों के ज्ञाता,
ज्ञानी, ध्यानी, मौनी, मोक्ष पथ प्रदाता गुरुवर,
निराडम्बर ज्ञान दाता, आशीष हम पर सदा रहे,
अभिनन्दन करोऽऽऽ

परमागम ज्ञाता (गुरुवर) ऋषिवर, शंका समाधानकर्त्ता,
अनसुलझे तथ्यों को, क्षण भर में है सुलझाते,
अनुभव ज्ञानी, स्वाध्याय तपस्वी, हमारा कल्याण करे,
अभिनन्दन करोऽऽऽ

बड़े ज्ञानी है 'कनकनन्दी' गुरुवर

(खुशी जैन) कक्षा-8
सहायक-सुवत्सलमती माताजी

(चाल : बड़ा नटखट है रे.....)

बड़े ज्ञानी है 'कनकनन्दी'...ध्यानी ज्ञानी व मुनि हो...
उनका लक्ष्य है 'मैं' को पाना...साधना व अनुभव को पाना...
बड़े सच्चे है कनकनन्दी...उनको नमन करे नन्हें...
ये है विश्व में ज्ञान प्रसारी...इनकी ज्ञान की महिमा जाने...

बड़े सौभाग्यशाली है हम बच्चे...जिनको कनकनन्दी गुरु मिले...
इनके मन में न राग-द्वेष...ये तो करे आत्म विशुद्धि...
बड़े क्रांतिकारी ये है गुरुवर...अनुभव, ज्ञान का बोध कराते...
स्व-पर विश्व हितकारी है ये...परपीड़ा से पीड़ित होते...
कभी हिंसा न करते गुरुवर...अन्य को भी न करने देते...
बड़े अनुभवी है ये ऋषिवर...'मैं' को पाने की शिक्षा देते...
गुरु हमें नित्य शिक्षा देते...शिक्षा लेते व शिक्षा देते...
गुरु कम सोते व जागते अधिक...जागकर सुकाव्य रचते...
'खुशी' करे इनका अभिवादन...पाने इनके गुण गण पावन...

ग.पु. कॉलोनी, दिनांक 12.02.2016, रात्रि 9.45

धन्य हूँ मैं व अन्य धन्य जीव

-आचार्य कनकनन्दी

(विविध चाल : तुम अगर साथ देने का वादा करो.....(कभी प्यासे को पानी.....), क्या मिलिये ऐसे लोगों से....., तुम दिल की धड़कन में....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया....., अच्छा सिला दिया.....)

धन्य हूँ मैं सत्य ज्ञान प्राप्त कर...धन्य हूँ मैं आत्म ज्ञान (को) प्राप्त कर...
धन्य हूँ मैं हित-अहित जानकर...धन्य हूँ मैं आत्मविश्वासी बनकर...
धन्य हूँ मैं ब्रह्मचर्य धारण कर...धन्य हूँ मैं श्रमण साधु बनकर...
धन्य हूँ मैं आगम ज्ञान कर...धन्य हूँ मैं शोध-बोध प्राप्त कर...(1)
धन्य हूँ मैं प्रतिज्ञा धारण कर...धन्य हूँ मैं अयाचक व्रत धर...
धन्य हूँ मैं भौतिक निर्माण त्याग कर...धन्य हूँ मैं चन्दा-चिट्ठा (को) त्याग कर...
धन्य हूँ मैं ख्याति-पूजा त्याग कर...धन्य हूँ मैं आडम्बर को त्याग कर...
धन्य हूँ मैं लंद-फंद त्याग कर...धन्य हूँ मैं भीड़ का लोभ/(लोकेष्णा) त्याग कर...(2)
धन्य हूँ मैं समता धारण कर...धन्य हूँ मैं तनाव/(दबाव) त्याग कर...
धन्य हूँ मैं ईर्ष्या-घृणा त्याग कर...धन्य हूँ मैं परनिन्दा/(पर चिन्ता) त्याग कर...
धन्य हूँ मैं अनुभव प्राप्त कर...धन्य हूँ मैं वीतराग विज्ञान कर...
धन्य हूँ मैं आत्महित में रत होकर...धन्य हूँ मैं जिनवाणी को लिखकर...(3)

धन्य हूँ मैं उदार-सहिष्णु बनकर...धन्य हूँ मैं संकीर्णता को त्यागकर...
धन्य हूँ मैं कट्टरता को त्याग कर...धन्य हूँ मैं अनेकांती बनकर...

धन्य हूँ मैं स्वपर मत जानकर...धन्य हूँ मैं आधुनिक ज्ञानी बनकर...
धन्य हूँ मैं सर्वोदय भाव धरकर...धन्य हूँ मैं अन्त्योदयी भाव धरकर...(4)

धन्य हूँ मैं गुण-गुणी प्रशंसा कर...अनुमोदना व प्रोत्साहन को कर...
दोष जानकर दोष निवारण कर...मैत्री प्रमोद कारुण्य साम्य रहकर...

धन्य हूँ (मैं) स्वात्मा को परमात्मा मानकर...तदनुकूल ही भाव धारण कर...
लक्ष्यानुकूल ही साधनारत होकर...धन्य हे 'कनक' स्व-आत्मा का ध्यान कर...(5)

जो उत्तम गुणों से भी होते युक्त...उन्हें भी 'कनकनन्दी' माने धन्य...
उत्तम भाव-व्यवहार वाले ही होते धन्य...केवल सत्ता-संपत्ति से न कोई धन्य...

दान-दया-परोपकार से जो युक्त...सत्य-समता-शांति से सहित...
वे ही धन्य है भले कोई भी हो...नैतिक व आध्यात्मिक गुण युक्त हो...(6)

आत्म चिन्तन

मैं हूँ मोक्षमार्ग एवं मोक्ष

(मैं हूँ एक निश्चय से शुद्ध ज्ञानदर्शनमय अमूर्तिक द्रव्य)

-आ. कनकनन्दी

गाथा- ''अहमेक्क खलु शुद्ध दंसणणाणमय सयारूवी''

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

मैं हूँ एक निश्चय से शुद्ध, ज्ञानदर्शनमय अमूर्तिक द्रव्य।
परमाणु नहीं एक भी मेरे अंदर, यह मेरा स्वरूप है द्रव्यार्थिक।।

द्रव्यदृष्टि से मैं एक जीव द्रव्य, जीव होता है चैतन्यमय।
चेतन होता है अमूर्तिकमय, दर्शनज्ञानादि अनंतगुणमय।।

ऐसा श्रद्धान होता सम्यग्दर्शन, जो आत्मा का शुद्ध अमूर्तिक गुण।
संज्ञी जीव को होता सम्यग्दर्शन, मन द्वारा उत्पन्न मन से भिन्न।।

उपशम क्षयोपशम व क्षय से, दर्शनमोहनीय अनंतानुबंधी के।
तथापि कर्म से परे सम्यक्त्व, अमूर्तिकमय शुद्धात्मा भाव।।

देव-शास्त्र-गुरु का होता श्रद्धान, उनसे भिन्न/(परे) निज शुद्धात्मा गुण।
द्रव्य तत्त्वादि/(पदार्थ) का होता श्रद्धान, उनसे परे निज शुद्धात्म गुण।।

योग्य द्रव्य-क्षेत्र-काल के द्वारा, पंचलब्धियों के संयोग द्वारा।
होता सम्यक्त्व विशुद्धि द्वारा, तो भी सम्यक्त्व अन्य से न्यारा।।

सम्यक्त्व से होता सम्यग्ज्ञान स्व-संवित्ति रूप निज का गुण।
आगम अध्ययन भी होता कारण, निश्चय से निज आत्म गुण।।

दोनों से युक्त होता सम्यक् चारित्र तीनों के योग से बने मोक्षमार्ग।
तीनों की पूर्णता से होता मोक्ष, शुद्ध-बुद्धमय जीव का स्वरूप।।

सम्यक्त्व से लेकर मोक्ष पर्यंत, जीव के गुण ही होते गर्भित।
अतएव स्वयं जीव होता प्रमुख, अन्य सभी सहयोगी बाह्य निमित्त।।

अतएव स्व का स्वयं कर्त्ता-धर्त्ता, स्वयं का स्वयं ही उद्धार कर्त्ता।
इसी हेतु अनिवार्य होते निमित्त, स्व-उपलब्धि ही 'कनक' का ध्येय।।

(मेरी (कनकनन्दी) 36वीं दीक्षा जयंती के उपलक्ष्य में आत्मोपलब्धि हेतु यह कविता बनी।)

मेरी (आ. कनकनन्दी की) स्वाध्याय-ज्ञानार्जन की पद्धति-अध्ययन-अध्यापन-ग्रंथ लेखन आदि

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : जय हनुमान.....)

सर्वज्ञ प्रणीत आगम द्वारा...अनेकांत (सिद्धांत) अलौकिक गणित द्वारा...
कर्म-सिद्धांत-विश्व व्यवस्था...सत्य/(तथ्य) ज्ञान करता हूँ षट् द्रव्य द्वारा...
अध्ययन-मनन-चिंतन द्वारा...एकाग्र मन-आत्म विशुद्धि द्वारा...
सनम्र सत्यग्राही उदार भाव से...परिज्ञान करूँ आत्म विश्लेषण से...(1)...
ज्ञान व ज्ञानी प्रति विनय द्वारा...आदर-सत्कार-बहुमान द्वारा...
पूजा संकीर्तन सन्मान द्वारा...उनका अपमान निरसन द्वारा...
जिज्ञासा करूँ मैं जानने हेतु...अध्यापन करूँ ज्ञान प्राप्ति/(दान) हेतु...

समीक्षा-समन्वय सर्वत्र करूँ...अज्ञान त्रुटियों को दूर भी करूँ...(2)...
देश-विदेशों के प्राचीन-अर्वाचीन...धर्म-दर्शन-गणित-विज्ञान...
इतिहास-पुराण-कानून-संविधान...भाषा-आयुर्वेद व मनोविज्ञान...
परीक्षण-निरीक्षण सर्वत्र करता...गुण-दोषों का परिज्ञान करता...
शोध-बोध व प्रयोग द्वारा...गुण ग्रहण व दोष परिहार करता...(3)...
विमलसागर गुरु कुंथुसागर...भरतसागर सूरी सन्मतिसागर...
इनके आदेश-आवश्यकतानुसार...अनेक शिष्य-भक्तों के आग्रहानुसार...
धर्म प्रभावना-प्रचार-प्रसार हेतु...एकाग्र मन-धर्मध्यान के हेतु...
शुभ उपयोग कर्मनिर्जरा हेतु...ज्ञानावरणीय कर्म क्षयोपशम हेतु...(4)...
ग्रंथ व लेख लिख रहा हूँ पूर्व से...क्षुल्लक अवस्था उन्नीस सौ अस्सी (1980) से...
दो हजार दश (2010) से सीपुर क्षेत्र से...काव्य रचना हो रही अविरल से...
ज्ञानदानी शिष्य-भक्त देश-विदेशों के...प्रकाशित कर रहे स्वेच्छा-भक्ति से...
अनेक भाषा में अनेक संस्करण छपते...देश-विदेशों में साहित्य भी जाते...(5)...
इसी से मेरे ज्ञान-ध्यान बढ़ रहे हैं...अनुभव शुभ भाव बढ़ रहे हैं...
मौन-एकांतवास भी बढ़ रहे है...निस्पृह-निराडम्बर बढ़ रहे है...
लाभान्वित हो रहे ज्ञानदानी भक्त...सहयोग कर्त्ता शिष्य व भक्त...
अध्ययन-अध्यापन करने वाले...शोधार्थी-विद्यार्थी प्रोफेसर्स वाले...(6)...
अतः साहित्य लेखन कर रहा हूँ...स्वाध्याय तप उत्कृष्ट कर रहा हूँ...
अयोग्य भाव-व्यवहार से बच रहा हूँ...स्व-अध्ययन हेतु 'कनक' कर रहा हूँ...(7)...
(मैं साहित्य लेखन क्यों कर रहा हूँ-ऐसी जिज्ञासा (प्रश्न-शंका-गलत भाव-व्यवहार-कथन) के समाधान हेतु यह कविता बनी।)

मेरी भावना

शुद्धात्मा स्वरूप ही मेरे साध्य-साधन-ध्यान-अध्ययन आदि

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति.....)
शुद्ध आत्म स्वरूप है संकल्प-विकल्प व संक्लेश रिक्त।

शुद्ध-बुद्ध आनंदकंद ऐसा ही मेरा शुद्ध स्वरूप।।

इसी रूप ही मेरा सम्यक्त्व है ज्ञान सहित चारित्र भी।
ये ही मेरे साध्य-साधन ऐसे ही ध्यान-अध्ययन भी।। (1)

ऐसे ही मेरे लक्ष्य व प्राप्य व्रत-नियम व तप-त्याग आदि।
विचार-व्यवहार लेखन-अध्यापन अनुशासन संयम आदि।।

प्रवचन-प्रभावना मनन-चिन्तन शोध-बोध-प्रतिज्ञा आदि।
कर्त्ता कर्म व करण सम्प्रदान अपादान अधिकरण सम्बन्ध आदि।। (2)

समस्त शक्ति व समस्त उपलब्धि, इसी हेतु ही मेरा समर्पण।
सब ही द्रव्य यथा आकाश में गर्भित, तथा ही मेरा मुझे समर्पण।।

इसी हेतु सर्व बाह्य द्रव्य/(संबंध) त्याग कर रहा हूँ नवकोटि से।
राग-द्वेष मोह काम क्रोध व ईर्ष्या, घृणा-तृष्णा आदि को।। (3)

तथाहि ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि व संकल्प-विकल्प आदि।
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा व लंद-फंद व द्वंद्व आदि।।

शुद्धात्मा स्वरूप समता-शांति, व निर्विकल्प व निष्कम्प।
निस्पृह-निराडम्बर स्वयं में ही लवलीन होना ही मेरा संकल्प।। (4)

यथायोग्य सुद्रव्य क्षेत्र काल भाव निमित्त व उपादान को पाकर।
मेरा ही शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करना ही 'कनक' का परम लक्ष्य।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 18.02.2016, प्रातः 7.20

(यह कविता डॉ. मैक्सवेल माल्ट्ज लिखित 'मन की शक्ति' में वर्णित ''दूसरे लोगों पर अच्छी छाप छोड़ने का सबसे अच्छा तरीका यह है : कभी भी चेतन रूप से उन पर अच्छी छाप छोड़ने की कोशिश न करे'' से भी प्रभावित है।)

ध्येय, ध्याता, ध्यानादि का स्वरूप

जं किंचिवि चिंतंतो णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।
लद्धूणय एयत्तं तदाहु तं तस्स णिच्छयंज्झाणं।। (55)
यत् किन्चित् अपि चिन्तयन् निरीह वृत्तिः भवति यदा साधुः।
लब्धवा च एकत्वं तदा आहुः तत् तस्य निश्चयं ध्यानम्।।

When a Sadhu attaining concentration becomes void of conscious effort by meditating of anything whatever, that state is called real meditation.

ध्येय पदार्थ में एकाग्रचित होकर जिस किसी पदार्थ को ध्यावता हुआ साधु जब निस्पृह वृत्ति सब प्रकार की इच्छाओं से रहित होता है उस समय उसका ध्यान निश्चय ध्यान होता है ऐसा आचार्य कहते हैं।

'तदा' उस काल में 'आहु' कहते हैं। 'तं तस्स णिच्छयं ज्झाणं' उसको, उसका निश्चय ध्यान (कहते हैं)। जब क्या होता है? 'णिरीहवित्ती हवे जदा साहु' 'जब निस्पृह वृत्ति वाला साधु ध्याता होता है। क्या करता है?' 'जं किंचिवि चिंतंतो' जिस किसी ध्येय वस्तु स्वरूप का विशेष चिंतवन करता है। पहिले क्या करके? 'लद्धूणय एयत्तं' उस ध्येय में प्राप्त होकर। क्या प्राप्त होकर? एकपने को अर्थात् एकाग्र चिंता निरोध को प्राप्त होकर (ध्येय पदार्थ में एकाग्र चिंता का निरोध करके यानि एकचित्त होकर) जिस किसी ध्येय वस्तु का चिंतवन करता हुआ साधु जब निस्पृहवृत्ति वाला होता है, उस समय साधु के उस ध्यान को निश्चय ध्यान कहते हैं विस्तार से वर्णन-गाथा में 'यत् किंचित् ध्ययेम्' (जिस किसी भी ध्येय पदार्थ को) इस पद से क्या कहा है? प्रारंभिक अवस्था की अपेक्षा से जो सविकल्प अवस्था है, उसमें विषय और कषायों को दूर करने के लिए तथा चित्त को स्थिर करने के लिए पंचपरमेष्ठी आदि परद्रव्य भी ध्येय होते हैं। फिर जब अभ्यास से चित्त का स्थिरपना हो जाता है तब शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव निज शुद्ध आत्मा का स्वरूप ही ध्येय होता है 'निस्पृह' शब्द से मिथ्यात्व, तीनों-वेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चौदह अंतरंग परिग्रहों से रहित तथा क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य और भांड नामक दश बहिरंग परिग्रहों से रहित ध्यान करने योग्य पदार्थों में स्थिरता और निश्चलता को ध्यान का लक्षण कहा है। 'निश्चय' शब्द से अभ्यास प्रारंभ करने वाले की अपेक्षा व्यवहार रत्नत्रय के अनुकूल निश्चय रत्नत्रय को ग्रहण करना चाहिए और ध्यान में निष्पन्न पुरुष की अपेक्षा शुद्धोपयोग रूप विवक्षितैकदेश शुद्ध निश्चय, स्वरूप ग्रहण करना चाहिए। विशेष निश्चय आगे कहा जाने वाला है।

परमध्यान के कारण

मा चिट्ठह मा जंपह मा चिन्तह किंवि जेण होइ थिरो।

अप्पा अप्पम्मि रओ इणमेव परं हवे ज्झाणं।। (56)

मा चेष्ठत मा जल्पत मा चिन्तयत किमपि येन भवति स्थिरः।

आत्मा आत्मानि रतः इदं एव परं भवति ध्यानं।।

Do not act, do not talk, do not think, so that the soul may be attached to and fixed in itself. This only is excellent meditation.

हे ज्ञानीजनों! तुम कुछ भी चेष्टा मत करो अर्थात् काय के व्यापार को मत करो, कुछ भी मत बोलो और कुछ भी मत विचारो। जिससे कि तुम्हारी आत्मा अपनी आत्मा में तल्लीन स्थिर होवे, क्योंकि जो आत्मा में तल्लीन होता है वही परम ध्यान है।

जिस प्रकार स्थिर जल में बड़ा पत्थर डालने पर जल अस्थिर होता है और छोटा पत्थर डालने पर भी जल अस्थिर होता है भले अस्थिरता में अंतर हो। उसी प्रकार किसी भी प्रकार के संकल्प-विकल्प, चिंतन, कथन, क्रियादि से आत्मा में अस्थिरता/कम्पन्न/चंचलता/क्षोभ हो जाता है। इसलिये श्रेष्ठ ध्यान के लिए समस्त संकल्पादि को त्याग करके आत्मा में ही पूर्ण निश्चल रूप से स्थिर होना चाहिए। अतः आचार्यश्री ने कहा है कि-

'मा चिठ्ठह मा जंपह मा चिंतह किंवि' हे विवेकी पुरुषों! नित्य निरंजन और क्रिया रहित निज-शुद्ध-आत्मा के अनुभव को रोकने वाला शुभ-अशुभ चेष्टा रूप काय की क्रिया को तथा शुभ-अशुभ अंतरंग-बहिरंग रूप-वचन को और शुभ-अशुभ विकल्प समूह रूप मन के व्यापार को कुछ मत करो।

'जेण होइ थिरो' जिन तीनों योगों के रोकने से स्थिर होता है। वह कौन? 'अप्पा' आत्मा। कैसा होकर स्थिर होता है? 'अप्पम्मि' स्वाभाविक शुद्ध ज्ञान दर्शन स्वभाव जो परमात्म तत्त्व के सम्यक् श्रद्धान-ज्ञान आचरण रूप अभेद रत्नत्रयात्मक परम ध्यान के अनुभव से उत्पन्न सर्व प्रदेशों को आनंददायक ऐसे सुख के अनुभव रूप परिणति सहित स्व-आत्मा में रत, तल्लीन, तच्चित्त तथा तन्मय होकर स्थिर होता है। 'इणमेव परं हवे ज्झाणं' यही जो आत्मा के सुख स्वरूप में तन्मयपना है, वह निश्चय से परम उत्कृष्ट ध्यान है।

उस परम ध्यान में स्थित जीवों को जो वीतराग परमानंद सुख प्रतिभासित होता है वही निश्चय मोक्षमार्ग का स्वरूप है। वह अन्य पर्यायवाची नामों से क्या-क्या कहा जाता है, सो कहते हैं। वही शुद्ध आत्म-स्वरूप है, वही परमात्मा का स्वरूप है, वही एक देश में प्रकटता रूप विवक्षित एक शुद्ध-निश्चयनय से निज-शुद्ध आत्मानुभव

से उत्पन्न सुख रूपी अमृत जल के सरोवर में राग आदि मलों से रहित होने के कारण परमहंस स्वरूप है। परमात्मा ध्यान की भावना की नाममाला में इस एक देश व्यक्ति रूप शुद्ध नय के व्याख्यान को यथासंभव सब जगह लगा लेना चाहिए ये नाम एकदेश शुद्ध निश्चयनय से अपेक्षित है।

वही परम ब्रह्म स्वरूप है, वही परम विष्णु रूप है, वही परम शिव रूप है, वही परम बुद्ध स्वरूप है, वही परम जिन स्वरूप है, वही परम निज आत्मोपलब्धि रूप सिद्ध स्वरूप है, वही निरंजन स्वरूप है, वही शुद्धात्म दर्शन है, वही परम अवस्था स्वरूप है, वही परमात्म दर्शन है, वही ध्यान करने योग्य शुद्ध पारिणामिक भाव रूप है, वही ध्यान भावना रूप है, वही शुद्ध चारित्र है, वही परम पवित्र है, वही अंतरंग तत्त्व है, वही परम तत्त्व है, वही शुद्ध आत्म द्रव्य है, वही परम ज्योति है, वही शुद्ध निर्मल स्वरूप है, वही स्वसंवेदन ज्ञान है, वही परम तत्त्वज्ञान है, आत्मानुभूति है, वही आत्मा की प्रतीति है, वही आत्म संवित्ति आत्म-संवेदन है, वही निज आत्म स्वरूप की प्राप्ति है, वही नित्य आनंद है, वही नित्य पदार्थ की प्राप्ति हैं, वही परम समाधि है, वही परम आनंद है वही नित्य आनंद है वही स्वाभाविक आनंद है, वही सदानंद है, वही शुद्ध आत्म पदार्थ के अध्ययन रूप है, वही परम स्वाध्याय है, वही निश्चय मोक्ष का उपाय है, वही एकाग्र चिंता निरोध है, वही परमज्ञान है, वही शुद्ध उपयोग है, वह ही परम-योग समाधि है, वही भूतार्थ है, वही परमार्थ है, वही निश्चय ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य रूप निश्चय पंचाचार है, वही समयसार है, वह ही अध्यात्मसार है, वही समता आदि निश्चय षट् आवश्यक स्वरूप है, वह ही अभेद रत्नत्रय स्वरूप है वही वीतराग सामायिक है, वह ही परम शरण रूप उत्तम मंगल है, वही केवल ज्ञानोत्पत्ति का कारण है, वही समस्त कर्मों के क्षय का कारण है, वही निश्चय दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप, आराधना स्वरूप है वही परमात्मा भावना रूप है, वही परम अद्वैत है, वही अमृत स्वरूप परम धर्म ध्यान है, वही शुक्ल ध्यान है, वही राग आदि विकल्प रहित ध्यान है, वही निष्कल ध्यान है, वही परम स्वास्थ्य है, वही परम वीतरागता है, वही परम समता है, वही परम एकत्व है, वही परम भेदज्ञान है, वही परम समरसी भाव है, इत्यादि समस्त रागादि विकल्प-उपाधि रहित, परम आह्लाद एक सुख लक्षणमयी ध्यान स्वरूप निश्चय मोक्षमार्ग को कहने वाले अन्य बहुत से पर्यायवाची नाम परमात्म तत्त्व ज्ञानियों के द्वारा जानने योग्य होते हैं।

मुझे ही मुझे जानना-मानना-पाना है

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन.....)

मैं हूँ श्रद्धाज्ञान चारित्रमय, मैं हूँ पुण्य-पाप व मोक्ष।
मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता विधाता व मेरा ही उद्धारकर्त्ता।।

इसलिये मुझ में ही मेरा सब, मुझ से भिन्न अन्य में मेरा नहीं।
मुझे ही मुझे प्राप्त करना है, सबका यथायोग्य सहयोग लेना (है)।। (1)

मुझ में ही मुझे देखना है सब, मैं हूँ ज्ञाता दृष्टा स्वरूप।
मुझे ही मुझे प्राप्त करना है, अतः दूसरों से मैं हूँ स्वतंत्र।।

मुझ में ही सब कुछ पाना मुझे, अतः अन्य से कुछ नहीं पाना।
अतः अन्य से न मुझे लेना-देना, अतः अन्य से न राग-द्वेष (है)।। (2)

मेरा ही मैं जब उद्धारकर्त्ता, मुझे ही मुझे उपदेश देना।
अन्य को उपदेश देने का संक्लेश नहीं, आत्महित करने का संकल्प है।।

सब कुछ यदि मुझ में स्थित है, अतः अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रिक्त।
अतः स्वयं में ही मैं स्थिर होता हूँ 'कनकनन्दी' अन्यत्र नहीं जाता हूँ।। (3)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 18.02.2016, अपराह्न 5.13

(यह कविता 'मन की शक्ति-डॉ. मैक्सवेल' से भी प्रेरित है।)

निदान रहित मेरी धर्म-साधना

निदान से होता है मिथ्यात्व गुणस्थान-संसारवर्द्धन
(धर्म से सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-सांसारिक सुख-वैभव आदि की इच्छा/(कामना) करना निदान है)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरेऽऽऽ.....)

जिया रे! तू कभी न निदान करोऽऽऽ
निदान रहित धर्म के द्वाराऽऽऽ संसार विच्छेद करोऽऽऽ...(ध्रुव)...

निस्पृह होकर धर्म करने सेऽऽऽ मिलेगा तुझे मोक्ष सुखऽऽऽ
आकांक्षा सह धर्म करने सेऽऽऽ मिले है संसार में दुःखऽऽऽ
सांसारिक काम है दुःखऽऽऽ जिया रे!...(1)...

सत्ता-संपत्ति-भोग आकांक्षा सेऽऽऽ जो करते हैं धार्मिक कामऽऽऽ
यथार्थ से वे न करते है धर्मऽऽऽ वे करते निदान आर्त्त ध्यानऽऽऽ
अति निकृष्ट आर्त्त ध्यानऽऽऽ जिया रे!...(2)...

धन की इच्छा (व) प्रसिद्धि हेतुऽऽऽ कभी न करो धर्म कामऽऽऽ
तप-त्याग व ध्यान-अध्ययनऽऽऽ सभी हो निष्काम कर्म (मय)ऽऽऽ
इच्छा निरोध तप (धर्म)ऽऽऽ जिया रे!...(3)...

निदान मात्र से ही होते अधार्मिकऽऽऽ होता मिथ्यात्व गुणस्थानऽऽऽ
साधु होकर यदि कोई करे निदानऽऽऽ होता मिथ्यात्व गुणस्थानऽऽऽ
दीर्घ भव परिभ्रमणऽऽऽ जिया रे!...(4)...

पानी प्राप्ति हेतु आर्त्त ध्यान सेऽऽऽ सेठ बन गया था मेंढ़कऽऽऽ
महावीर के दर्शन की भावना सेऽऽऽ देव बना है वही मेंढ़कऽऽऽ
निदान से पुण्य क्षीणऽऽऽ जिया रे!...(5)...

सांसारिक इच्छा से धर्म करना तोऽऽऽ अविचारित रम्यकर्मऽऽऽ
यह तो मीठा जहर समान हैऽऽऽ जिससे क्षय होता पुण्यकर्मऽऽऽ
सातिशय पुण्य भी (होता) पापकर्मऽऽऽ जिया रे!...(6)...

निदान रहित जिस धर्म के कारणऽऽऽ मिले तीर्थंकर बनने सम पुण्यऽऽऽ
निदान सहित उस धर्म के कारणऽऽऽ मिले रावण बनने सम पुण्यऽऽऽ
भववर्द्धक निरतिशय पुण्यऽऽऽ जिया रे!...(7)...

प्रसिद्धि हेतु (यदि) कोई निदान करताऽऽऽ मुझे मिले तीर्थंकर पदऽऽऽ
इससे हो जाता मिथ्यादृष्टि वहऽऽऽ मिले है संसार दुःखप्रदऽऽऽ
कर्मक्षय हेतु धर्म करऽऽऽ जिया रे!...(8)...

मोक्ष प्राप्ति योग्य शरीर प्राप्ति हेतुऽऽऽ जो करता प्रशस्त निदानऽऽऽ
वह न होता अनुचित व मिथ्यात्वऽऽऽ दुःख व कर्मक्षय का चिन्तनऽऽऽ
बोधिलाभ-सुगतिगमनऽऽऽ जिया रे!...(9)...

निदान रहित देवशास्त्र गुरुभक्तिऽऽऽ दान-दया-सेवा-वैयावृत्तिऽऽऽ
इससे होता सातिशय पुण्यार्जनऽऽऽ जिससे होते है उत्तम कामऽऽऽ
स्वर्ग-मोक्षदायक कामऽऽऽ जिया रे!...(10)...

निस्पृह निराडम्बर मुनिधर्म पालनऽऽऽ ध्यान-अध्ययन-तपश्चरणऽऽऽ
इससे मिलता है परिनिर्वाणऽऽऽ अक्षय अनंत सुख-धामऽऽऽ
'कनक' करे (ऐसे) प्रशस्त निदानऽऽऽ जिया रे!...(11)...

ग.पु.कॉलोनी, दिनांक 12.02.2016, प्रातः 9.05 (वसंत पञ्चमी)

मेरी शून्यता व पूर्णता

-आ. कनकनन्दी

(चाल : यमुना किनारे.....)

आशा-निराशा से दूर हो जाऊँ, मोहनीय कर्म से परे हो पाऊँ।
आत्मविश्वास से पूर्ण हो जाऊँ, मिथ्यात्व कर्म से परे हो जाऊँ।।

तन-मन-इन्द्रियों से परे हो जाऊँ, शुद्ध-बुद्ध-आनंदमय हो जाऊँ।
द्रव्य-भाव-नोकर्म से परे हो जाऊँ, सच्चिदानंदमय अमूर्तिक हो जाऊँ।।

ख्याति पूजा लाभ से परे हो जाऊँ, रत्नत्रय से मैं पूर्ण हो जाऊँ।
यशकीर्ति/(नामकर्म) प्रसिद्धि (से) परे हो जाऊँ, आत्मोपलब्धि रूपी सिद्धि पा जाऊँ।।

भौतिक सत्ता-संपत्ति वैभव परे, अनंत ज्ञान दर्शन सुख पूरे।
धन-जन-मन व नाम से परे, अस्तित्व-वस्तुत्व (आदि) चैतन्य गुणों से पूरे।।

भाई-बंधु-कुटुम्ब व समाज (से) परे, शत्रु-मित्र-अपना व पराया परे।
जन्म-जरा-मरण-रोगों से परे, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यत्व शुद्धता पूरे।।

भोगोपभोग सांसारिक सुख से परे, ज्ञानानंद भरीत स्वभाव पूरे।
भौतिक-निर्माण व वर्चस्व परे, परिनिर्वाण व प्रभुत्व पूरे।।

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा परे, आत्मानुलंबी व स्वतंत्र पूरे।
हानि-लाभ जनित सुख-दुःख से परे, टंकोत्कीर्ण ज्ञायक सुख से पूरे।।

ईर्ष्या-द्वेष-घृणा-काम-क्रोध से परे, उदार-पावन चेतना पूरे।
पर से परे व स्वयं से पूरे/(पर से शून्य व स्वयं से पूर्ण)

'कनकनंदी' तो अस्ति-नास्ति से पूरे।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 20.02.2016 रात्रि 8.20

(यह कविता 'स्वरूप सम्बोधन' आचार्य अकलंक देव से भी प्रभावित)

(आध्यात्मिक व वैज्ञानिक शोधपूर्ण कविता)

अभूतपूर्व विचार-व्यवहार मैं करूँ-सफलता हेतु

('अभावियं भावेमि, भावियं ण भावेमि'-जो नहीं भाया हूँ वह भाऊँगा जो भाया हूँ वह नहीं भाऊँगा-गौतम गणधर स्वामी)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन.....)

अनादि काल से जो सोचा हूँ वह न सोचूँगा मैं अभी।
अभूतपूर्व ज्ञान-वैराग्य युक्त, विचार व्यवहार करूँ मैं अभी।।

अनादि काल से राग-द्वेष-मोह-ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा से युक्त होकर।
संकीर्ण स्वार्थ व भोगोपभोग हेतु, विचार-व्यवहार किया हूँ अपार।। (1)

रूढ़ि परम्परा व संकीर्णता युक्त, हठग्राहिता व पूर्वाग्रह सहित।
लोकानुगतिक व देखादेखी भाव व्यवहार किया हूँ मैं अंनत।।

इसलिए ये सब भाव व्यवहार हो जाते हैं सहज-सरल।
ये सब तो अनादि कर्म संस्कार जनित इसी से न बन पाऊँगा उन्नत।। (2)

ये सब संकीर्णता व बंधन है इसी से न होगा मेरा सर्वोदय।
सर्वोदय हेतु इसी से परे मुझे करना है भाव व काम।।

अक्षय अनंत गुणों का मैं हूँ स्वामी सच्चिदानंदमय मेरा स्वरूप।
अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य मैं हूँ अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रभुत्व स्वरूप।। (3)

इसलिए तो आत्मा को पुरुष कहा जाता जिसमें पुरु (उदार) गुण करते वास।
मैं हूँ आत्मा अतः मैं पुरुष मुझे प्राप्त करना है मेरे सर्वस्व।।

उदार गुण युक्त मैं पुरुष होने से, संपूर्ण संकीर्णता से रहित हूँ।
संकीर्ण पंथ-मत-जाति-भाषा परे, मैं शुद्ध-बुद्ध-आनंद हूँ।। (4)

इसलिए मैं हूँ समस्त सांसारिक सीमा से परे सच्चिदानंद।

आकाश के सम अनंत अमूर्तिक अव्याबाध व ज्ञानानंद।।

इसलिये मैं लौकिक जन सम नहीं करूँगा भाव व व्यवहार।
अपना-पराया भेद-भाव युक्त ख्याति-पूजा व लाभ सहित।। (5)

उदार पावन वैश्विक भाव युक्त ज्ञान-वैराग्य व समता सहित।
आध्यात्मिक शोध-बोध व अनुभव सहित निश्चल निर्मल युक्त।।

आधुनिक विज्ञान भी अभी उक्त विषयों को सही सिद्ध कर रहा।
क्रियेटिव थिंकिंग व इनोवेशन रूप में व्यवहार रूप में सिद्ध कर रहा।। (6)

कल्पनाशीलता व सकारात्मकता मौलिकता से होते हैं नवीन काम।
इसी से होती बुद्धि की वृद्धि जिससे होते पुनः नवीन-(नवीन) काम।।

इसी के कारण विज्ञान में नित नये-नये शोध-बोध हो रहे हैं।
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक में नये-नये शोध-बोध हो रहे हैं।। (7)

भौतिक विज्ञान से भी अनंत आयाम वाला आध्यात्मिक विज्ञान है।
मैं तो आध्यात्मिक शोधार्थी हूँ अतः 'कनक' सोचे विज्ञान से (भी) परे।। (8)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 16.02.2016, रात्रि 10.55
(यह कविता विदेशी वैज्ञानिक चैनल से भी प्रभावित है।)

(आत्म चिन्तन-सम्बोधन)

मैं मेरी बात करूँ!?

उत्तम आत्म चिन्ता करूँ...अधम पर चिन्ता त्यागूँ!

सृजेता-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोड़ो कल की बातें.....)

छोड़ो अन्य की बातेंऽऽऽ अन्य की बातें बेमानीऽऽऽ
आत्मकल्याण हेतु करो/(गुनो, सुनो)ऽऽऽ अपनी आत्म कहानीऽऽऽ
मैं हूँ आतम ज्ञानीऽऽऽ मैं मुमुक्षु प्राणीऽऽऽ छोड़ो...(ध्रुव)...

आत्म चिन्ता है उत्तम...यह ही ज्ञान व ध्यान...
पर चिन्ता है अधम...आर्त्त-रौद्र ध्यान...
आत्म चिन्ता से मिलते...समता-सुख व ज्ञान...

पर चिन्ता से मिलते...तनाव-अशांति कर्म/(भ्रम)...
समता प्रेमी हूँ...आध्यात्म प्रेमी...मैं हूँ आतम ज्ञानी...(1)...

सभी जीव में करूँ मैत्री...गुणी में प्रमोद...
दुःखी जीवों में करुणा (भाव)...विपरीत में साम्य...
इससे भिन्न अन्य न करूँ...राग-द्वेष-मोह...
ईर्ष्या घृणा तृष्णा द्वेष...निन्दा-अपमान...
अपाय विचय ध्यान करूँ...करूँ विपाक विचय...मैं (हूँ) मुमुक्षु प्राणी...(2)...

स्व-स्व-कर्म आधीन...हर जीव के भाव/(व्यवहार)...
मैं न अन्य का कर्त्ता/(धर्त्ता)...स्व का उद्धारकर्त्ता...
स्वयं का शोध-बोध करूँ...मैं स्व-सुधार...
ध्यान-अध्ययन-मनन...चिन्तन आत्म रमण...
यह है मेरी आत्म कहानी...'कनक' की जीवनी...मैं हूँ आतम ज्ञानी...(3)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 10.02.2016, ब्रह्ममुहूर्त 6.15

सफलता पाने की मेरी साधना

-आ. कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., भातुकली.....)

सरल सहज जीवन से सफलता चाहता हूँ मैं आनंद से।
लंद-फंद व द्वंद बिना विकास चाहता हूँ मैं समता से।।

दिखावा-आडम्बर प्रसिद्धि शून्य दबाव-प्रलोभन-भय के बिना।
सत्ता-संपत्ति-प्रभुत्व बिन विकास चाहता हूँ मैं संक्लेश बिना।। (1)

धैर्य-साहस व क्षमा युक्त वात्सल्य-प्रेम व सहिष्णु युक्त।
सादा जीवन उच्च विचार युक्त तप-त्याग व शुचिता सहित।।

पर अपमान निन्दा रिक्त धूर्त पाखण्ड शोषण मुक्त।
माईक-मंच-पाण्डाल रिक्त प्रभावना करूँ (मैं) निस्पृहता युक्त।। (2)

अनुशासन व आत्मविशुद्धि युक्त महान् लक्ष्य व शॉर्टकट रिक्त।
भौतिक लाभ निदान रहित, आत्मकल्याण ही एकमेव लक्ष्य।।

ध्यान-अध्ययन शोध-बोध सहित लेखन-पठन स्व-पर हित सहित।
वर्चस्व रहित निःकांक्षा सहित अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रहित।। (3)

आत्मानुभव स्वावलंबन युक्त समयानुबद्ध एकाग्रता सहित।
राग-द्वेष-मोह करूँ विनष्ट आत्मोपलब्धि करूँ आनंद युक्त।।

सत्य-शिव-सुंदर बनना लक्ष्य इसी हेतु ही मेरा सभी पुरुषार्थ।
इसी सफलता हेतु मैं प्रयासरत स्वयं की (मैं-स्व) उपलब्धि ही 'कनक' लक्ष्य।। (4)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 21.02.2016, रात्रि 3.38

मेरी प्रतिस्पर्द्धा का स्वरूप व परिणाम

(परमात्मा बनने के लिए बहिरात्मा से मेरी (अंतरात्मा की) प्रतिस्पर्द्धा)

-आ. कनकनन्दी

(चाल : सायोनारा....., केशरिया-केशरिया....., भातुकली.....)
प्रतिस्पर्द्धा-प्रतिस्पर्द्धा, स्वयं की स्वयं से ही प्रतिस्पर्द्धा।
आत्मविकास हेतु/(की) प्रतिस्पर्द्धा, बहिरात्मा से मेरी प्रतिस्पर्द्धा
/(परमात्मा बनने की प्रतिस्पर्द्धा)।। (ध्रुव)

मैं हूँ परमात्मा निश्चय से, बहिरात्मा था मैं अनादि से।
अंतरात्मा से बनूँ परमात्मा, प्रतिद्वंद्वी मेरा बहिरात्मा।
संपूर्ण नाश करूँ बहिरात्मा।। (1)

अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ, मिथ्यात्व परे बना अंतरात्मा।
अप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान परे/(जिता) अंतरात्मामयी श्रमण दशा।
शुभ में रहकर शुद्ध की आशा, शुभ से परे बनूँ (मैं) परमात्मा।। (2)

(शेष) विभाव नाश हेतु मेरी प्रतिस्पर्द्धा, ध्यान-अध्ययन से जितूँ प्रतिस्पर्द्धा।
चार कषाय नौ-नो कषाय जीतूँ, आत्मविशुद्धि से विजयी बनूँ।
इसी हेतु प्रतिस्पर्द्धा सतत करूँ, समता-शांति से आगे मैं बढ़ूँ।। (3)

इसी हेतु ख्याति पूजा लाभ मैं त्यागूँ, दीन-हीन-अहंकार भाव मैं त्यागूँ।
छोटा-बड़ा ऊँचा-नीचा परे मैं सोचूँ, वैर-विरोध परे मैं सोचूँ।
अन्य से प्रतिस्पर्द्धा कभी न करूँ, अंतः/(अंतरंग) शत्रु से प्रतिस्पर्द्धा (मैं) करूँ।। (4)

प्रतिस्पर्द्धा से मेरी होगी पराजय, जब अन्य से होगी प्रतिस्पर्द्धा।
अन्य से प्रतिस्पर्द्धा से होते, राग-द्वेष-ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा।
जिससे हारूँगा मैं प्रतिस्पर्द्धा, जिससे होगा मेरा आत्म पतन।। (5)

एक साथ होते अनंत सिद्ध, अनंत शक्ति से होते सम्पन्न।
तथापि वे प्रतिस्पर्द्धा से रहित, अनंत आत्माधीन सुख सम्पन्न।
'कनक' का लक्ष्य आत्माधीन सुख, मेरी प्रतिस्पर्द्धा का यही परिणाम।। (6)

अन्य से अन्य (लोग) प्रतिस्पर्द्धा करते, संसार वर्द्धक वे काम करते।
मुझे तो संसार से परे होना है, अतः स्वयं से स्वयं की स्पर्द्धा।
अन्य से प्रतिस्पर्द्धा मेरी नहीं, प्रतिस्पर्द्धा परे लक्ष्य मेरा।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 02.02.2016, रात्रि 10.15

मेरी भावना-साधना व फल

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रिक्त व समता युक्त निर्णय व कार्य

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., जीना यहाँ.....)

अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रिक्त, साधना करूँ मैं समता युक्त।
बहिरंग भावों को मैं त्यागता जाऊँ, आत्मिक भावों को (मैं) पाता जाऊँ।। (ध्रुव)

किसी से भी अपेक्षा मैं करता नहीं, ख्याति पूजा लाभ हेतु कहता नहीं।
सेवा-दान-सहयोग करने पर, धर्म-लाभ हेतु प्रोत्साहन/(आशीष) भी करूँ।।

किसी की भी उपेक्षा मैं करता नहीं, तिरस्कार अनादर भी मैं करता नहीं।
निन्दा-अपमान भी करता नहीं, विपरीत जनों से माध्यस्थ रहूँ।।

आत्महित में अन्य की न प्रतीक्षा करूँ, आत्महित पहले ही करता रहूँ।
आलस्य-प्रमाद-भेड़चाल के बिना, स्वावलंबी-स्वानुशासी भाव मैं करूँ।।

इसी से लंद-फंद-द्वंद न होते, आकर्षण-विकर्षण-घर्षण न होते।
राग-द्वेष-पक्षपात-संक्लेश न होते, अपना-पराया भेदभाव न होते।।

समता-शांति से आत्म-साधना होती, आत्मविशुद्धि से आत्मसंतुष्टी होती।

ध्यान-अध्ययन-मनन-चिंतन होते, शोध-बोध-अध्यापन-लेखन होते।।

आत्म संवेदन भविष्य ज्ञान भी होते, स्वप्न-शकुन अंग स्फूरण द्वारा भी होते।
अनुभव व अनुमान के द्वारा भी होते, छाया-पुरुष-भाव शकुन द्वारा भी होते।।

सुदीर्घकालीन भावना-साधना द्वारा, प्रयोग-परिणाम व अनुभव के द्वारा।
सत्य-तथ्य व सुफल पा रहा हूँ, भावना-साधना सदा बढ़ा रहा हूँ।।

अन्य से असंभव सुफल पा रहा हूँ, सत्य समता शांति पा रहा हूँ।
दूसरों के लिए दुरूह विपरीत भी, ज्ञान-ध्यान वैरागय पा रहा हूँ।।

इसी के अनुसार भाव-व्यवहार मैं करूँ, मौलिक स्वतंत्रता से निर्णय करूँ।
दबाव प्रलोभन व सुझाव मत से, कोई निर्णय न करूँ (अन्य के) राय से।।

इसके भी अनुभव अनेक किया, अनुभव से अनेक सुफल भी पाया।
अंतरात्मा से परमात्मा बनने हेतु, 'कनक' हर काम करे आत्मविशुद्धि हेतु।।
/(अन्तःकरण से निर्णय सुफल हेतु)।।

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 09.02.2016, मध्याह्न 2.45

मेरी पावन भावना-अनुभव-परिणाम

-आ. कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

मेरी कामना है मेरी भावना पहले मैं करूँ शुभ भावना।
उदार-पावन-भावना मैं धरूँ/(भाऊँ) कोई जाने या न माने भावना करूँ।।

कोई प्रेम करे या नहीं भी करे, कोई सही माने या नहीं भी माने।
सभी के लिए मैत्री भावना धरूँ, सभी सुखी रहे ऐसी भावना करूँ।। (1)

(गुण) गुणी जन से प्रमोद भावना धरूँ, गुण प्राप्ति हेतु मैं भावना धरूँ।
गुणी को कोई माने या न माने, उनसे प्रभावित कभी न बनूँ।।

दुःखी जीवों प्रति करुणाभाव मैं धरूँ, हर जाति-धर्म-देश से करूँ।
तन-धन-साधन से भले न करूँ, सभी जीव सुखी बने भावना धरूँ।। (2)

शत्रु-मित्र उपकारी या अपकारी, भक्त शिष्य या सेवाकारी।
कोई पूजे या कोई नहीं भी पूजे, सभी प्रति समता भाव ही धरूँ।।

सभी के हित हेतु (ही) भावना करूँ, तथाहि वचन व लेखन करूँ।
सही माने या कोई गलत माने, स्व-पर-विश्वहित भावना धरूँ।। (3)

सभी बने उदार व पावन-सुखी, ऐसी भावना ही मैं सतत करूँ।
मेरी भावना (भले) पूरी हो या न हो भी, मेरी भावना मैं भाता रहूँगा (ही)।।

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि रहित, भावना मैं भाऊँ आत्मशुद्धि/(शांति) निमित्त।
राग द्वेष मोह क्षय निमित्त/(के लिए), भावना भाऊँ मैं आत्मप्राप्ति निमित्त
/(के लिए)।। (4)

ऐसी भावना से मुझे मिलती शांति, समता-उदारता (व) संतुष्टि होती।
श्रद्धा-प्रज्ञा व आत्मविशुद्धि बढ़ती, अशांति-विषमता आदि घटती।।

यह सब अनुभव भी कर रहा हूँ, इसलिए भावना को बढ़ा रहा हूँ।
मेरी भावना को भी जो समझ पाते, आदर-सत्कार बहुमान देते।। (5)

स्वेच्छा से तन-मन-धन-समय से, दान-सेवा कर रहे हैं श्रम से।
साहित्य प्रकाशन आदि धर्म प्रचार में, सहयोग कर रहे देश-विदेश में।।

धर्म व विज्ञान में जो भी पढ़ा हूँ, प्रयोग से अनुभव कर रहा हूँ।
पावन भावना में है अनंत शक्ति, इसी हेतु प्रयासरत 'कनकनन्दी'।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 10.02.2016, रात्रि 8.20
(यह कविता भूपेश चीतरी वाले के कारण बनी।)

मेरे लिए आध्यात्मिक ही परम सत्य क्यों?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

परम सत्य को (मैं) जानना चाहता हूँ...अभी नहीं तो आगे पाना चाहता हूँ...
मनुष्य की सीमा से भी परे चाहता हूँ...इन्द्रिय-यंत्रों से भी परे चाहता हूँ...
परम सत्य को...(स्थायी)...

पढ़ता हूँ देश-विदेशों के ग्रंथों को...मानवकृत अनेक विध ग्रंथों को...
धर्म-दर्शन-विज्ञान-इतिहास को...सत्य जानने हेतु न्याय संविधान को...
इन सभी में नहीं है परम सत्य...परस्पर विरोध भी सभी में निहित...

नहीं है परम समता व परम उदारता...नहीं है समन्वय व नहीं निरपेक्षता...
परम सत्य को...(1)...

कार्य-कारण संबंध भी सभी नहीं...सम्पूर्ण प्रश्नों के भी उत्तर नहीं...
परम सुख हेतु न उपाय भी होते...उपायों के वर्णन भी सम्यक्/(सम्पूर्ण) न होते...
आध्यात्मिक में ही उक्त दोष न होते...सम्पूर्ण गुण इसी में सहित भी होते...
श्रद्धा-प्रज्ञा से ही ऐसा अनुभव होता...अतएव आध्यात्मिक को मैं चाहता...
परम सत्य को...(2)...

आध्यात्मिक है मेरा शुद्ध स्वरूप...हर जीव का भी है यही स्वरूप...
शुद्ध रूप से हर जीव अतः समान...परम सत्य समता व सुख सम्पन्न...
आध्यात्मिकता ही मेरा स्वभाव होने से...उसे पाने की वृत्ति होती सहजता से...
स्वभाव भले कभी विभाव हो सकता...स्वभाव का अभाव कभी न होता...
परम सत्य को...(3)...

राग-द्वेष-मोह भी न होते आत्मा में...ईर्ष्या-घृणा-तृष्णा भी न होते आत्मा में...
सच्चिदानन्दमय होता है आत्मा...आत्मा का शुद्ध रूप आध्यात्मिकता...
इसे ही जानना व पाना है मुझे...आत्मा की उपलब्धि करना है मुझे...
इसी हेतु ही 'मैं' करूँ सदा प्रयत्न...'कनकनन्दी' का यह परम लक्ष्य...
परम सत्य को...(4)...

मेरी शुद्धात्म-अनुप्रेक्षा

-आ. कनकनन्दी

(चाल : भावे वन्दु तो अरिहंत.....)
मैं आत्मा हूँ परमात्मा हूँ...मैं द्रव्य-गुण-पर्याय हूँ।
मैं शुद्ध-बुद्ध आनंद हूँ...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हूँ।।

सत्य समता शांति हूँ मैं...निर्मल व निर्विकार हूँ।
क्षमा-मार्दव-शौच हूँ मैं...सरल-सहज-सुख मैं हूँ।।

संयम-तप-त्याग हूँ मैं...आकिंचन्य ब्रह्मचर्य हूँ मैं।
अहिंसा अपरिग्रह निर्भय हूँ मैं...अचौर्य, निराबाध हूँ मैं।।

श्रद्धा-प्रज्ञा-चारित्र हूँ मैं...अस्तित्व-वस्तुत्व भी हूँ मैं।
मोक्षमार्ग-मोक्ष भी हूँ मैं...पुण्य-पाप रिक्त विशुद्ध हूँ मैं।।

द्रव्य-भाव-नोकर्म (से) परे मैं...तन-मन व इन्द्रिय परे हूँ।
धन-जन व नाम से (भी) परे मैं...जाति-लिंग व भाषा परे हूँ।।

क्षेत्र-काल सीमा से परे मैं...पंथ-मत सीमा से परे।
भेद-भाव से रहित हूँ मैं...शत्रु-मित्र से भी मैं परे।।

मुझमें ही मेरी अनंत शक्ति...मुझमें ही मेरी सभी उपलब्धि।
मुझमें ही मेरे सभी धर्म है...'कनक' मुझमें (ही) मेरे सभी तीर्थ।।

चिन्तन-मननशील कनक गुरु

रचयित्री-विजयलक्ष्मी गोदावत
सहायक-मञ्जरी जैन

(चाल : पल-पल दिल के पास.....)

पल-पल मेरे मन मेंऽऽऽ गुरु रहते होऽऽऽ
धर्म है श्रेष्ठ मार्गऽऽऽ ये कहते होऽऽऽ पल-पल...(ध्रुव)...

चिन्तन व मनन में...सतत रत रहते हो...
स्व-आत्म चिन्तन में...सदा लीन रहते हो...
निस्पृही कनक गुरु...स्वाध्याय प्रेमी है...
भक्तों व शिष्यों के...उद्धारकर्त्ता हो...
गुण को बढ़ाते हो...दोष दूर करते होऽऽऽ पल-पल...(1)...

अंतर्मुखी सूरीवर...अलौकिक वृत्ति है...
कोई समझे या ना समझे...समता में रहते हैं...
आगम के अनुकूल...सदा वर्तन करते है...
भाव-व्यवहार भी...शास्त्रोक्त करते हैं...
इनकी साम्य मुद्रा...आगम को कहती हैऽऽऽ पल-पल...(2)...

कनकनन्दी गुरुवर...समदृष्टि धारी है...
प्रकृति प्रेमी हैं...लेखक कविवर है...

मिथ्यादृष्टियों से भी...ये शिक्षा लेते हैं...
छोटे हो या बड़े...सबसे सीखते हैं...
आध्यात्म प्रेमी गुरुवर...जग से निराले होऽऽऽ पल-पल...(3)...

ग.पु. कॉलोनी, दिनांक 25.02.2016

महानतम श्रद्धा-प्रज्ञा-आचरण : आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., आत्मशक्ति.....)

सबसे श्रेष्ठ हे सबसे ज्येष्ठ है, स्व-आत्मा का ज्ञान व भान।
सबसे क्लिष्ट है सबसे दुर्लभ, स्व-आत्मा की उपलब्धि महान्।

अन्य को माना (पर) स्वयं को न माना, अन्य को जाना (पर) स्वयं को न जाना।
ये सब नहीं है महान् काम, इसी से न होता आत्मविश्वास महान्।। (1)

सबसे अधिक (श्रद्धा) प्रज्ञा से होता है, स्व-आत्मा का भी सही विश्वास।
सबसे अधिक श्रद्धा से होता है, स्व-आत्मा का भी सही विश्वास।।

स्व-आत्मा है शुद्ध-बुद्ध-आनंद, अनंत चेतन अमूर्तिक पिण्ड।
अनंत गुण-धर्म पर्याय सहित, अनादि अनिधन सच्चिदानंद।। (2)

ऐसे अनंत आयाम युक्त स्वयं को, जानना-मानना नहीं है सरल काम।
इसी हेतु अनंत श्रद्धा-प्रज्ञा चाहिए, अनंत को मापने हेतु मापक अनंत।।

भुजा से आकाश न मापने योग्य है, क्षुद्र बुद्धि से न होता आत्मविश्वास।
चम्मच से यथा सिन्धु अमापक होता, तथा तुच्छ श्रद्धा से नहीं आत्मविश्वास।। (3)

अनंतानुबंधी क्रोधादि नाश से, अनंत शक्ति युक्त मोह नाश से।
आत्मा में होता है श्रद्धा (प्रज्ञा) का उदय, जिससे होता है सच्चा आत्मविश्वास।।

इसी से भिन्न जो होता (है) विश्वास, यथार्थ से वह नहीं आत्मविश्वास।
वे सभी (ही) अहंकार या मिथ्या विश्वास, तन-मन-धनादि के विश्वास।। (4)

आत्मविश्वास से होता आत्म ज्ञान, जो यथार्थ से होता सच्चा विज्ञान।
आत्मा की उपलब्धि हेतु जो आचरण, वही यथार्थ से है सदाचरण।।

आत्मा की उपलब्धि से होता जीव, पावन, अनंत ज्ञानदर्शनमय आनंद धन।
अतएव आत्मविश्वास आदि महान्, इसी हेतु 'कनक' करे सतत उद्यम।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 29.02.2016, रात्रि 8.37

संदर्भ-

1. अपनी बुद्धि को परखा हो, समझना चाहते हो और जानना चाहते हो कि यह कितनी गहरी और उपयोगी है तो अपने मन में झाँककर देखे कि आपका आत्मविश्वास कितना दृढ़ है।
2. सच्चे ज्ञान में दो चीजें होती है ईश्वर को जानना और स्वयं को जानना। ऐसा ज्ञान किसी काम का नहीं जो ईश्वर को, सत्य को न जानता हो या जानने में मदद न करता हो। (जॉन केल्विन-फ्रांस के दार्शनिक)

विषयानुक्रमणिका

अ.क्र	विषय	पृ.सं.
1.	विनय सम्पन्नता भाव से ओतप्रोत कनकनन्दी गुरुदेव	2
2.	आ. कनकनन्दी से स्वाध्याय का प्रभाव (फल)	2
3.	आ. कनकनन्दी जी गुरुदेव की विशेषताएँ	3
4.	वैश्विक गुरु श्री कनकनन्दी जी श्रीसंघ से एक भक्त/शिष्य की विनम्र प्रार्थना/निवेदन	4
5.	स्वाध्याय तपस्वी कनकनन्दी गुरुवर	5
6.	बड़े ज्ञानी हैं 'कनकनन्दी' गुरुवर	5
7.	धन्य हूँ मैं व अन्य धन्य जीव	6
8.	मैं हूँ मोक्षमार्ग एवं मोक्ष	7
9.	मेरी (आ. कनकनन्दी की) स्वाध्याय-ज्ञानार्जन की पद्धति-अध्ययन-अध्यापन-ग्रंथ लेखन आदि	8
10.	शुद्धात्मा स्वरूप ही मेरे साध्य-साधन-ध्यान अध्ययन आदि	9
11.	मुझे ही मुझे जानना-मानना-पाना है	14
12.	निदान रहित मेरी धर्म-साधना	14
13.	मेरी शून्यता व पूर्णता	16
14.	अभूतपूर्व विचार-व्यवहार मैं करूँ-सफलता हेतु	17
15.	मैं मेरी बात करूँ!?	18
16.	सफलता पाने की मेरी साधना	19
17.	मेरी प्रतिस्पर्द्धा का स्वरूप व परिणाम	20
18.	अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा रिक्त व समता युक्त निर्णय व कार्य	21
19.	मेरी पावन भावना व परिणाम	22
20.	मेरे लिए आध्यात्मिक ही परम सत्य क्यों?	23
21.	मेरी शुद्धात्म-अनुप्रेक्षा	24
22.	चिन्तन-मननशील कनक गुरु	25
23.	महानतम श्रद्धा-प्रज्ञा-आचरण : आत्मविश्वास-ज्ञान-चारित्र	26

अ.क्र	विषय	पृ.सं.

परम-स्वतंत्रता गीताञ्जली

1.	साधुओं की सामूहिक परमात्म प्रार्थना	31
2.	साधुओं की सामूहिक परमात्म प्रार्थना	31
3.	मैं हूँ धर्म...मैं हूँ धर्मी	32
4.	अहं हूँ मैं...आत्मा हूँ मैं	33
5.	मेरा विश्व स्वरूप चिंतन	33
6.	स्व-परमात्मा का वंदन-अभिनंदन स्व-द्वारा	34
7.	कठिन व सरल भी है मोक्षमार्ग	36
8.	सिद्धि बनाम प्रसिद्धि : सिद्धि से अनंत सुख है तो प्रसिद्धि की चाह से अनेक दुःख	36
9.	परमागम से शुद्धात्मा का वेदन-सम्यग्ज्ञान	37
10.	ज्ञानानंद-समता रस मैं पाऊँ/पान करूँ	39
11.	श्रमण हेतु स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान प्रमुख	40
12.	मैं को जानना-मानना-पाना ही अति दुर्लभतम क्यों!?	41
13.	बुद्धि बढ़ाने के सरल उपाय	42
14.	स्वाध्याय से तन-मन-आत्मा होते हैं स्वस्थ्य	43
15.	हितकारी व अहितकारी ज्ञान	45
16.	स्व-परोपकारी आचार्य की शिक्षा पद्धति	56
17.	अलौकिक-अद्वितीय-अनुपम-अति पावन जैन धर्म के शब्दादि	64
18.	आध्यात्मिक दृष्टि से अज्ञानी	65
19.	जैन धर्म की कुछ अति अद्वितीय विशेषताएँ	67
20.	स्वयं (आत्मा-अहं-मैं) के वर्णन आदि धर्म है न कि अधर्म (घमण्ड)	68
21.	परम सामायिक चारित्र की व्यापकता व महत्ता	71
22.	अपुनरागम पथ : मोक्ष पथ (गद्य)	79
23.	सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म का स्वरूप (गद्य)	86

24.	समता/अहिंसा	87
25.	सापेक्ष विचार/सहिष्णुता (उदारता)	88
26.	आध्यात्मिकता ही परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-सत्य-धर्म-सुख	90
27.	मेरी शक्तियों का संवर्द्धन चाहता हूँ!	91
28.	परम सत्य को जानने की मेरी साधना	92
29.	विचित्र मानव	98
30.	पशु-पक्षी-देव-नारकी-नर-नारी भी होते है जैन (सम्यग्दृष्टि आदि)	100
31.	शुद्ध भाव वालों को विपरीत ज्ञानी मानते है दुर्जन! क्यों?	102
32.	अधिक ज्ञानी साधु व कम ज्ञानी साधु परस्पर निन्दा न करें	103
33.	आत्मानुभवी प.पू.आ. श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के चरणों में सुनीति की हृदयाभिव्यक्ति	104
34.	अभौतिक मेरा लक्ष्य : अतः अन्य से अप्रत्यक्ष	107
35.	आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव को मैंने जैसा सुना-समझा-पाया	108
36.	आचार्य कनकनन्दी जी की विशेषताएँ	113
37.	द्वय आचार्य संघों का वात्सल्य मिलन	114
38.	मणिभद्र जैन का आचार्यश्री के लिए सेवा हेतु निवेदन पत्र	115
39.	वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव वैश्विक व्यक्तित्व एवं कृतित्व	116
40.	आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के शोधपूर्ण साहित्य	117
41.	विश्व कल्याणी जिनवाणी माँ	127
42.	मेरी सम्यक् व्यवहार की प्रवृत्ति	128

परम स्वतंत्रता गीताञ्जली

साधुओं की सामूहिक परमात्मा प्रार्थना

(चाल : ऐ मालिक तेरे बन्दे हम.....)

हे! परमात्मन् तेरे भक्त हम...तेरी भक्ति से बने भगवन्...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...करे तेरा ही चिन्तन-मनन...
हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(ध्रुव)...

तव ज्ञानार्थे पढ़े आगम...तव ध्यानार्थे एकाग्र मन...
तव चिन्तन में प्रमुदित मन...तव प्राप्ति हेतु बने श्रमण...
अरिहंत-सिद्ध व आचार्य...उपाध्याय-साधु तेरे रूप...
तेरा ज्ञान करे...हे! परमात्मन्...आऽऽ आऽऽ आऽऽ...(1)...

अर्हन्-सिद्ध पूर्ण परमातम...शेष तीनों आंशिक परमातम...
पूर्ण परमात्मा बनना चाहे हम...अतः अन्तर आतम बने हम...
आत्म विशुद्धि समता शांति (से)...हमें बनना है परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(2)...

ख्याति-पूजा-लाभ त्यागे हम...राग-द्वेष-मोह त्यागे हम...
ईर्ष्या-घृणा व तृष्णा त्यागे हम...कट्टर संकीर्णता त्यागे हम...
विकल्प-संक्लेश त्यागे हम...अपेक्षा-प्रतीक्षा त्यागे हम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(3)...

तव आराधना-पूजा से...तव प्राप्ति के प्रयत्न से...
अहंकार त्याग स्वानुभवी बने...अशुभ से शुभ-शुद्ध बने हम...
अन्तर आतम से (बने) परमातम...'कनक' शुद्ध रूप परमातम...
तेरा ज्ञान करे...तेरा ध्यान धरे...(4)...

साधुओं की सामूहिक परमात्म प्रार्थना

मूल रचना-आचार्य कनकनन्दी
रूपानतर-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : मंगल मूरति राम दुलारे....., सायोनारा.....)

शुद्ध शाश्वत हे! परमातम...परम सत्य हे! परमागम...

तव ज्ञान/(ध्यान) से बने महान्/(भगवान्)...
हे! निज रूप तुझे प्रणाम/(तेरी लब्धि से हो कल्याण)...(ध्रुव)...
तव ज्ञानार्थे पढ़े हम आगम...तव ध्यानार्थे हो एकाग्र मन...
तव प्राप्ति हेतु बने श्रमण (हम)...तव चिन्तन में प्रमुदित मन...शुद्ध शाश्वत...(1)...
अरिहंत-सिद्ध व आचार्य...उपाध्याय-साधु तेरे रूप...
अर्हन्-सिद्धपूर्ण/(शुद्ध) परमातम...शेष त्रय अंश परमातम...शुद्ध शाश्वत...(2)...
पूर्ण परमात्मन बनना चाहे...अतः अन्तर आतम बने हम...
आत्म विशुद्धि समता शांति (से)...हमें बनना है परमातम...शुद्ध शाश्वत...(3)...
ख्याति पूजा लाभ त्यागे हम...राग-द्वेष-मोह त्यागे हम...
भेदभाव संकीर्णता/(पूर्वाग्रह, दुराग्रह) त्यागे...ईर्ष्या-घृणा-तष्णा त्यागें...शुद्ध शाश्वत...(4)...
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा भाव...संकल्प-विकल्प-संक्लेश भाव...
इन विभावों को त्याग कर(के)...सतत करे हम तेरा ध्यान...शुद्ध शाश्वत...(5)...
तव आराधन व पूजन से...अशुभ से शुभ-शुद्ध बने हम...
अहंकार त्यज स्वानुभवी/(परमातम) बन...'सुविज्ञ' श्रमण करो कल्याण...शुद्ध शाश्वत...(6)...

मैं हूँ धर्म...मैं हूँ धर्मी...

(चाल : चन्दा है तू...मेरा सूरज है तू.....)
सत्य हूँ मैं व...द्रव्य हूँ मैं...अनंत गुणधारी आत्मा हूँ मैं...
ज्ञानी हूँ मैं व...श्रद्धानी हूँ मैं...चारित्र गुणधारी सिद्ध हूँ मैं...(ध्रुवपद)...
धर्म हूँ मैं...धर्मी हूँ मैं...गुण हूँ मैं...गुणी हूँ मैं...
मोक्षमार्गी...रत्नत्रयमय...दशधर्ममय...आत्मा...
बारह भावना...स्वरूप हूँ मैं...सोलह कारण...भावना हूँ मैं...सत्य हूँ मैं...(1)...
उत्तम क्षमा...स्वरूप हूँ मैं...उत्तम मार्दव...रूप मैं...
उत्तम आर्जव...रूप हूँ मैं...उत्तम शौच रूप मैं...
उत्तम सत्य...स्वरूप हूँ मैं...उत्तम संयम...स्वरूप हूँ मैं...सत्य हूँ मैं...(2)...
उत्तम तप...स्वरूप हूँ मैं...उत्तम त्याग...रूप मैं...
उत्तम आकिञ्चन्य...रूप मैं...उत्तम ब्रह्मचर्य मैं...

समता-शांति...स्वरूप हूँ मैं...'कनक' ज्ञानानंद रूप हूँ मैं...सत्य हूँ मैं...(3)...

संदर्भ : ध्यान सूत्राणि (आचार्य माघनन्दीकृत)

अनन्तगुण स्वरूपोऽहम् - मैं अनंत ज्ञान स्वरूप हूँ।

अनन्तज्ञान स्वरूपोऽहम् - मैं अनंत ज्ञान स्वरूप हूँ।

स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन स्वरूपोऽहम् - मैं स्वाभाविक ज्ञान-दर्शन स्वरूप हूँ।

(आदि अनेक सूत्र)

अहं हूँ मैं - आत्मा हूँ मैं

(चाल : चंदा है तू.....भातुकली.....)

अहं हूँ मैं, आत्मा हूँ मैं...द्रव्य स्वरूप जीव हूँ मैं।

निज स्वरूप जिन हूँ मैं...शुद्ध-बुद्धमय सिद्ध हूँ मैं।। (ध्रुव)

द्रव्य-भावकर्म शून्य मैं...तन-मन अक्ष रिक्त मैं...

राग-द्वेष मोह शून्य मैं...चिदानन्द अमूर्त मैं...

पुण्य-पाप से भी रहित मैं...जन्म-मरण से परे भी मैं...(1) अहं हूँ मैं...

अनादिकर्म बंधयुक्त मैं...बना हूँ देहयुक्त मैं...

राग-द्वेष-मोह सहित मैं...पुण्य-पाप सहित मैं...

यह तो अशुद्ध मूर्तिक रूप...निश्चय से नहीं मेरा स्वरूप...(2) अहं हूँ मैं...

अशुद्ध को (ही) न मानूँ मम रूप...तन आदि (ही) नहीं निज रूप...

इसे ही स्वरूप मानना मिथ्यात्व...ज्ञान चरण (भी) होते विरूद्ध...

व्यवहार निश्चय को सही मानता...दोनों सापेक्ष से सम्यक् होता...(3) अहं हूँ मैं...

व्यवहार-निश्चय मोक्षमार्ग से...रत्नत्रय आत्म भाव से...

समता-शांति आत्मध्यान से...कर्मक्षय (से) पाऊँ निजरूप मैं...

यह ही मोक्ष आत्म स्वरूप...'कनक' का लक्ष्य है स्व-स्वरूप...(4) अहं हूँ मैं...

मेरा विश्व स्वरूप चिन्तन

(चाल : चन्दा है तू...मेरा सूरज है तू.....)

तत्त्व है तू...मेरा...द्रव्य है तू...मेरा सर्वस्व आत्मा है तू...

पाप है तू...मेरा...पुण्य है तू...शुद्ध स्वरूप आतमा है तू...(ध्रुवपद)...

स्वर्ग है तू...नर्क है तू...मोक्ष स्वरूप है तू...
श्रद्धा है तू...प्रज्ञा है तू...चारित्रमय आतमा तू...
व्रत है तू...अव्रत है तू...दोनों से रहित...शुद्ध है तू...तत्त्व है तू...(1)...

ज्ञान है तू...ज्ञेय है तू...ध्यान है तू...ध्येय तू...
गुण है तू...पर्याय तू...उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तू...
सत् है तू व चित्त है तू...आनन्द स्वरूप...आध्यात्म तू...तत्त्व है तू...(2)...

अस्तित्व तू...वस्तुत्व तू...अगुरुलघु गुण है तू...
प्रमेय तू...प्रमेयत्व तू...अमूर्तिक व सूक्ष्म तू...
तन-मन व अक्ष रहित...द्रव्य-भाव-नोकर्म रिक्त (तू)...तत्त्व है तू...(3)...

स्वयंभू-सनातन...सम्पूर्ण तू...जन्म-मरण रिक्त तू...
मित्र है तू...अमित्र तू...सुपथ-कुपथगामी तू...
शिष्य है तू व गुरु है तू...'कनकनन्दी' आतमा है तू...तत्त्व है तू...(4)...

आध्यात्मिक प्रार्थना

स्व-परमात्मा का वन्दन-अभिनंदन स्व-द्वारा

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., गजानना....., क्या मिलिये....., यमुना किनारे....., भातुकली....., विठू माझा....., देहाची तिजोरी.....)

तुझे सदा मेरा वन्दन है...तुझे मेरा अभिनंदन है...
शरीर मध्य में रहने वाला...शुद्ध-बुद्ध आनंदकंद है...(ध्रुवपद)...

तुझे वन्दना श्रद्धा के द्वारा...तुझे वन्दना प्रज्ञा के द्वारा...
ध्यान-अध्ययन-मनन द्वारा...अनुप्रेक्षा व स्मरण द्वारा...

व्रत-नियम व संयम द्वारा...तप-त्याग व सत्य के द्वारा...
सरल-सहज व आर्जव द्वारा...क्षमा-मार्दव व विनय द्वारा...(1)...

मौन (व) एकांत निवास द्वारा...निराडम्बर निस्पृह निर्द्वन्द्व द्वारा...
आकर्षण-विकर्षण रहित द्वारा...अपेक्षा-उपेक्षा रहित द्वारा...

तेरा-मेरा भेदभाव रहित द्वारा...संकल्प-विकल्प रहित द्वारा...
शान्ति-समता-शुचिता द्वारा...ज्ञानानन्द रसपान के द्वारा...(2)...

तेरा ही वन्दन तेरे ही द्वारा...तेरा अभिनंदन तेरे ही द्वारा...
ख्याति पूजा लाभ रहित द्वारा...धन जन मान रहित द्वारा...

पर निरापेक्ष स्व-भावना द्वारा...मञ्च माइक माला रहित द्वारा...
पत्रिका पोस्टर रहित द्वारा...विज्ञापन टी.वी. रहित द्वारा...(3)...

ज्ञान व दाता अभेद द्वारा...पूज्य व पूजक अभेद द्वारा...
अभेद षट्कारक स्वयं के द्वारा...'कनक' वन्दे स्व-आत्मा द्वारा...(4)...

नन्दौड़, दिनांक 15.09.2015, मध्याह्न 2.40

संदर्भ-

यः परात्मा सएवाहं सोऽहं स परमस्ततः।
अहमेव मयोपास्य नान्यः कश्चिदिति स्थिति।। (31) समाधितंत्र

जो परमात्मा हैं वे ही मैं हूँ...जो मैं हूँ वह है परमात्मा।
अतएव मम आत्मा की उपासना...परमात्मा की है उपासना।।

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम्।। (6) परमा. स्तोत्र

परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेषविवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु, यो जानाति स पण्डितः।। (20) परमात्मस्वरूप

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरिता।
ते जिनवराण मग्गं अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं।। (19) अ.पाहु.

जो स्व-द्रव्य का ध्यान करते हैं, पर-द्रव्य से पराङ्मुख रहते हैं एवं सम्यक् चारित्र का निरतिचार पालन करते हुए जिनेन्द्र देव के मार्ग में लगे रहते हैं, वे निर्वाण को प्राप्त होते हैं।

जिनवरमएण जोई झाणे झाएइ सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं।। (20) अ.पा.

जो योगी ध्यान में जिनेन्द्र देव के मतानुसार शुद्ध-आत्मा का ध्यान करता है

वह स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है, सो ठीक ही है क्योंकि जिस ध्यान से निर्वाण प्राप्त हो सकता है उससे क्या स्वर्ग लोक प्राप्त नहीं हो सकता?

कठिन व सरल भी है मोक्षमार्ग

-श्रमण मुनि सुविज्ञसागर

(चाल : कितना मधुर-कितना मधुर.....)

कितना कठिन...कितना सरल...है ये मुक्ति का मार्ग...लेना होता इसी हेतु जनम कई बार...
हाँऽऽऽ सम्यक् श्रद्धा-प्रज्ञा-संयममय है मोक्षमार्ग...लेना होता...(स्थायी)...

आत्मा का श्रद्धान-ज्ञान होना...बड़ा ही कठिन है...
इन दोनों के होने पर भी...संयम धारण क्लिष्ट है...हाँऽऽऽ...(1)...

तत्त्वार्थ श्रद्धान..आगम ज्ञान...संयमपना ये तीनों...
यदि न होवे एक साथ...कभी न मिलता है मोक्ष...हाँऽऽऽ...(2)...

मैं ही परमात्मा बनता हूँ...ऐसी श्रद्धा-प्रज्ञा युक्त...
अनुभव होने पर ही संसारी...जीव होता है मुक्त...हाँऽऽऽ...(3)...

श्रद्धावान् लभते ज्ञान...गीता में कहते हैं कृष्ण...
यथार्थ धर्म अति दुर्लभ...कहते हैं कनक सूरीवर...हाँऽऽऽ...(4)...

सरल भी है मोक्षमार्ग...जब होता समता भाव...
रत्नत्रय से युक्त होता...श्रमण/(मुमुक्षु) का निज भाव...हाँऽऽऽ...(5)...

भव्य जीव बहिरात्मा से...बनता अन्तर आतम है...
क्रम विकास करता हुआ...बनता परमात्मा है...हाँऽऽऽ...(6)...

सिद्धि बनाम प्रसिद्धि

सिद्धि से अनंत सुख है तो प्रसिद्धि की चाह से अनेक दुःख

(सम्यक् प्रसिद्धि एवं असम्यक् प्रसिद्धि)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की....., सायोनारा.....)

स्वात्मोपलब्धि रूपी (मुझे) सिद्धि चाहिए...ख्याति पूजा (रूपी) प्रसिद्धि नहीं चाहिए।

सिद्धि (मेरा) शुद्ध आत्म-स्वभाव/(स्वरूप) है...प्रसिद्धि तो कर्मजनित
विभाव है।।...(स्थायी)...

सिद्धि से प्राप्त होता अनंत सुख...अनंत ज्ञान दर्शन वीर्यादि रूप...
प्रसिद्धि कामना से न मिले सिद्धि सुख...ईर्ष्या घृणा तृष्णा आदि अनेक दुःख...

सिद्धि हेतु ख्याति पूजा का त्याग चाहिए...प्रसिद्धि हेतु ख्याति पूजा लाभ चाहिए...
सिद्धि मिले ईर्ष्या घृणा तृष्णा त्याग से...ईर्ष्या घृणादि बढ़े प्रसिद्धि चाह से...(1)...

प्रसिद्धि हेतु धन-जन-मान चाहिए...अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा भी चाहिए...
इस हेतु भेड़-भेड़िया चाल चाहिए...लंद-फंद-द्वंद्व-संक्लेश चाहिए...

शांति-कुंथु-अरह तीनों पद त्यागे...सत्ता-संपत्ति-कीर्ति से परे हो गये...
जिससे उन्हें मिली परम सिद्धि...प्रसिद्धि की चाह से न मिले सिद्धि...(2)...

तीर्थंकर कोई बनना चाहे कीर्ति इच्छा से...मिथ्यादृष्टि बन जाता (वह) तत्काल में...
मोक्ष हेतु यदि कोई चाहे उत्तम शरीर...उसकी चाह है सम्यक्त्व व श्रेष्ठतर...

यश कीर्ति नाम कर्म उदय होने से...पावन भाव-वचन व व्यवहार से...
दान दया सेवा व परोपकार से... प्रसिद्धि सहज ही होती उत्तम कार्य से...(3)...

ऐसी प्रसिद्धि है स्वागत योग्य...नवकोटि से भी ग्रहण करने योग्य...
इसके प्रशंसक करते सातिशय पुण्य...गुणानुमोदक प्रमोदक वे श्रेष्ठ सज्जन...

यदि कोई प्रसिद्धि हेतु करे काम...वह न करता सातिशय पुण्य काम...
उसकी प्रशंसा से न मिले सातिशय पुण्य...पापानुमोदक स्वार्थ पर दोषवर्द्धक...(4)...

देवशास्त्र गुरुवाणी प्रशंसा योग्य...सिद्धि हेतु हर काम करने योग्य...
प्रसिद्धि योग्य भाव-काम भी योग्य... 'कनक' चाहे सिद्धि योग्य ज्ञान-वैराग्य...(5)...

परमागम से स्व-शुद्धात्मा का वेदन=सम्यग्ज्ञान

(परम सम्यग्ज्ञान है-स्व-सम्वेदन ज्ञान/स्व-शुद्धात्म ज्ञान)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

''**अहमेक्को खलु सुद्धो**'' मैं एक हूँ, निश्चय से शुद्ध हूँ का सम्वेदन सम्यग्ज्ञान है।

''बहिरंगपरमागमाभ्यासेनाभ्यन्तरे स्वसम्वेदन ज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्''

(बाहर में परमागम का अभ्यास करते हुए भीतर में स्व-सम्वेदन ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।)

परम सम्यग्ज्ञान का स्वरूप जानो...परम आगम से स्व-सम्वेदन मानो...
आगम अध्ययन तो बाह्य कारण...स्व-शुद्धात्मा का वेदन है सम्यग्ज्ञान...(ध्रुव)...

आगम अभ्यास द्वारा होता स्व-ज्ञान...'मैं' हूँ शुद्ध-बुद्ध-आनंद घन...
द्रव्य-भाव-नोकर्मों से भी परे...तन-मन-इन्द्रिय कषाय परे...

ऐसा जब होता आत्मा का वेदन...वह ही निश्चय से होता सम्यग्ज्ञान...
यदि न होता ऐसा स्व-सम्वेदन...तब न होता निश्चय सम्यग्ज्ञान...(1)...

यथा दर्पण में प्रतिबिंब दिखता...दर्पण से/(में, द्वारा) अक्ष प्रतिबिंब को दिखता...
अंध न दिखे यथा प्रतिबिंब को...सम्वेदना रिक्त मोही न दिखे/(जाने) स्वयं को...

मोही का आगम ज्ञान भी मिथ्या ज्ञान...आगम से भी न करता स्व-सम्वेदन...
यथा चम्मच को स्वाद न आता...तथाहि मोही को स्व-सम्वेदन न होता...(2)...

यथा शक्कर के बारे में कोई पढ़ता...लेखन भाषण व प्रशंसा करता...
बिना चखे वह स्वाद न जानता...तथा स्व-सम्वेदन बिन आत्मा न जानता...

आगम वर्णित द्रव्य-तत्त्व-पदार्थ...मतिज्ञान से भी जानता है अर्थ...
स्व-सम्वेदन बिन न होता सुज्ञान...सुश्रुत ज्ञान न होता जो आत्म-सम्वेदन...(3)...

भव्यसेन मुनि का न था सम्यग्ज्ञान...पढ़कर भी वह सकल श्रुतज्ञान...
द्वादशांग-चतुर्दश पूर्व भी पढ़ा...स्व-सम्वेदन बिन सुज्ञानी न बना...

लौकिक ज्ञान समान नहीं है सुज्ञान...पढ़ना लिखना ही नहीं सुज्ञान...
आध्यात्मिक ज्ञान है स्व-आत्मज्ञान...स्व-आत्मज्ञान बिन सभी कुज्ञान...(4)...

आगम ज्ञान या देव-गुरु का ज्ञान...स्व-सम्वेदन बिन सभी कुज्ञान...
गणित विज्ञान कानून संविधान...स्व-सम्वेदन बिन सभी कुज्ञान...

स्व-शुद्धात्म ज्ञान ही है परम ज्ञान...इसी हेतु देव-शास्त्र-गुरु का ज्ञान...
अतएव स्व-शुद्धात्म वेदन विधेय...इसी हेतु 'कनक' करे नित्य स्वाध्याय...(5)...

ज्ञानानंद-समता रस मैं पाऊँ/पान करूँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : पायो जी मैंने राम रतन धन पायो.....)

पायो/(पीयो) जी मैंने ज्ञानानंद रस/(समता रसायन, आत्मानंद रस) पायो/(पीयो)ऽऽ..
जिससे परे न और कोई रस/(सुख)ऽऽऽ मैं अनुभव से पायोऽऽऽ पायोजी...(स्थायी)...

जिसे पाने हेतु चक्रवर्ती भीऽऽऽ षट्खण्ड वैभव त्यागोऽऽऽ
तीर्थंकर मुनि मौन में रहकरऽऽऽ सतत निजातम ध्यायोऽऽऽ
/(ख्याति-पूजा-लाभ त्यागोऽऽऽ) पायो...(1)...

आत्मा में ही मेरे अनंत वैभवऽऽऽ ज्ञान दर्शन सुख वीर्यऽऽऽ
अनंत शांति-तृप्ति भी मुझमेंऽऽऽ साधन-साध्य भी मुझमेंऽऽऽ
/(मोक्षमार्ग-मोक्ष भी मुझमेंऽऽऽ) पायो...(2)...

यथा तड़पती पीड़ा से मछलीऽऽऽ जल से होकर पृथक्ऽऽऽ
भले उसे रखो स्वर्ण-फर्श मेंऽऽऽ तथापि न मिले कुछ सुखऽऽऽ
/(ज्ञानानंद परे मिले (मुझे) दुःखऽऽऽ)/(समता रस परे दुःखऽऽऽ) पायो...(3)...

राग द्वेष मोह काम क्रोध मदऽऽऽ ईर्ष्या-तृष्णा-वैर-विरोधऽऽऽ
ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि चाहऽऽऽ भोग-आकांक्षा निदानऽऽऽ
/(सभी हैं अनात्म स्वभावऽऽऽ)/(इनसे न मिले आत्म-वैभवऽऽऽ)
(अतः ये सर्व दुःख भावऽऽऽ) पायो...(4)...

पर निन्दा अपमान तेरा मेरा भावऽऽऽ संकल्प-विकल्प-संक्लेशऽऽऽ
अपेक्षा-उपेक्षा-प्रतीक्षा भावऽऽऽ दबाव-प्रलोभन-तनावऽऽऽ
/(सभी हैं विकार स्वरूपऽऽऽ)/(समता रस/(ज्ञानानंद) के विनाशकऽऽऽ) पायो...(5)...

विज्ञापन पत्रिका टी.वी. प्रसारणऽऽऽ माईक मञ्च पण्डाल निमंत्रणऽऽऽ
गाजा बाजा साज सज्जाऽऽऽ भीड़ जयकार (आरती) पूजाऽऽऽ
/(मद से रहूँ मैं दूजाऽऽऽ)/(स्वात्मा की करूँ मैं पूजाऽऽऽ)
/(शांति रस पान करूँ सदा) पायो...(6)...

एकांत शांत प्रदूषण मुक्तऽऽऽ ग्राम-जंगल-शहर निवासऽऽऽ
ध्यान-अध्ययन-मौन युक्तऽऽऽ आत्म रमण करूँ सततऽऽऽ

/(मुझमें निवास (करूँ) सततऽऽऽ) पायो...(7)...

अनात्म सर्व विकार त्यागकरऽऽऽ स्व-शुद्धात्मा ही मैं ध्याऊँऽऽऽ
अध्ययन-मनन-कथन करूँऽऽऽ 'कनक' स्व-आतम पाऊँ/(वरूँ)ऽऽऽ
/('कनक' सच्चिदानंद बनूँऽऽऽ)/(शुद्ध-बुद्ध-आनंद बनूँऽऽऽ) पायो...(8)...

आत्म-संबोधन

श्रमण हेतु स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान प्रमुख

(स्व-शुद्धात्मा श्रद्धान बिन बाह्य तपादि से श्रमण नहीं!)

-श्रमण आचार्य कनकनन्दी

(चाल : मन रे! तू काहे न धीर धरे.....)

जिया रे!..तू स्वयं को सही समझोऽऽऽ!
निश्चय से तू शुद्ध-बुद्धऽऽऽ व्यवहार से अशुद्धऽऽऽ जिया रे!...(ध्रुव)...

उपयोगमय..तू है जीवऽऽऽ शरीर तो जड़ स्वभावऽऽऽ
इन्द्रिय-मन भी..जड़ रूप हैऽऽऽ तू तो अमूर्त रूपऽऽऽ
चिदानंद..स्वरूपऽऽऽ जिया रे!...(1)...

राग द्वेष मोह..काम क्रोध आदिऽऽऽ होते हैं विभाव भावऽऽऽ
द्रव्यकर्म से..जायमान होने सेऽऽऽये न तेरे शुद्ध स्वभावऽऽऽ
तू (तो) कर्मातीत चिन्मयऽऽऽ जिया रे!...(2)...

ऐसे श्रद्धान से..होता सुज्ञानऽऽऽ जिससे होता सु-आचरणऽऽऽ
तीनों मय ही..तेरा स्वरूपऽऽऽ तीनों की पूर्णता मोक्ष रूपऽऽऽ
शुद्ध-बुद्ध-आनंद रूपऽऽऽ जिया रे!...(3)...

इसी हेतु देव-शास्त्र-गुरु सहयोगीऽऽऽ तथाहि तप त्याग संयमऽऽऽ
स्व-श्रद्धान-ज्ञान-चारित्र शून्यऽऽऽ सहयोगी से भी न मिले मोक्षऽऽऽ
स्व-आत्मा प्रधान करऽऽऽ/(स्व-शुद्धात्म ध्यान करऽऽऽ) जिया रे!...(4)...

कृषि के लिए यथा प्रमुख है बीजऽऽऽ मृदा जलादि भी (बाह्य) सहयोगीऽऽऽ
मोक्ष (प्राप्ति) हेतु तथा स्व-शुद्धात्म मुख्यऽऽऽ देव-शास्त्र तपादि (बाह्य) सहयोगीऽऽऽ
तू हो प्रमुख मोक्षगामी/(मोक्षमार्गी)ऽऽऽ/

तुझे प्राप्त करना (है) मोक्षऽऽऽ जिया रे!...(5)...

आत्मविश्वास ज्ञान चारित्र शून्यऽऽऽ तप त्याग भी होंगे शून्यऽऽऽ
ईकाई बिन (यथा) शून्य का मूल्य शून्यऽऽऽ (तथाहि) स्व-आत्मा बिन तपादि शून्यऽऽऽ
आत्मविशुद्धि बिन न सुधर्म/(स्वधर्म)ऽऽऽ//('कनक' सेवे स्व-शुद्धात्म धर्मऽऽऽ)
/(व्यवहार से पाओ स्व-धर्मऽऽऽ) जिया रे!...(6)...

बाह्य तप-त्याग-प्रसिद्धि द्वारा हीऽऽऽ होगा न (तेरा) आत्म कल्याणऽऽऽ
धन-जन-मान-सम्मान से हीऽऽऽहोगा न आत्म कल्याण/(विकास)ऽऽऽ/
आत्म-उन्नयन न होगाऽऽऽ
/('कनक' स्व-ध्यान/(अध्ययन) करऽऽऽ) जिया रे!...(7)...

मैं (स्व) को जानना-मानना-पाना ही अति दुर्लभतम क्यों!?

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

सत्ता संपत्ति प्रसिद्धि डिग्री नहीं है दुर्लभ भोगोपभोग।
स्वयं (मैं) को जानना स्वयं को मानना स्वयं को पाना है अति दुर्लभ।। (1)

छः महीना व आठ समय में छः सौ आठ जीव पाते स्वयं/(मोक्ष) को।
इसी समय में अनंत जीव अनंत काम करते है विश्व में।। (2)

दुर्लभतम काम है (घटना) विश्व में स्व (मैं) को जानना व मानना।
इसी से भी अति दुर्लभतम काम है स्वयं (मैं) की उपलब्धि करना।। (3)

अनादि काल से हर जीव ने अनंतानंत जन्म-मरण किया।
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री व भोगोपभोग अनंत बार किया।। (4)

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोधवश, अनंतानंत कर्मों को बाँधा।
जिससे स्व-आत्म प्रदेशों को, अनंत परत में आवृत्त किया।। (5)

जिसके कारण स्व को जानना स्व को मानना (ज्ञान) न कर पाया।
स्व उपलब्धि तो दूर रहे स्व-श्रद्धान-ज्ञान से विपरीत किया।। (6)

स्व-स्वभाव से अनंत विपरीत श्रद्धान-ज्ञान व प्राप्ति किया।
इसलिए तो स्व को जानना-मानना व पाना ही अति दुर्लभ हुआ।। (7)

करोड़ों मील को प्रकाशित करने वाला सूर्य जब होता घन मेघाछन्न।
तब वह स्वयं ही नहीं दिखाई देता दिन में भी दिखने पर।। (8)

करोड़ों मील के लाखों तारों को भी जो आँख देख पाती है।
पास की भी विशाल वस्तु को न देखती स्व पलक से आछन्न होकर।। (9)

तथा ही स्व-पर अनंत ज्ञेय को जानने वाला जीव भी।
घन कर्म से आवृत्त होकर नहीं जान पाता स्वयं को भी।। (10)

गुरु उपदेश आदि पंचलब्धियों को जब पाता है भव्य जीव।
तब ही स्वयं को जान पाता है, आत्म विशुद्धि से स्वयं को।। (11)

स्वयं को जानता-मानता तब स्वयं को पाने हेतु करता पुरुषार्थ।
साधु बन आत्म साधना से स्वयं को पाकर ही पाता है मोक्ष।। (12)

यह उपलब्धि ही परम उपलब्धि तीन लोक व तीन काल में।
इसी हेतु ही 'कनकनन्दी' स्व (मैं) साधना में सदा रत है।। (13)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 06.02.2016, प्रातः 8.10
(यह कविता मणिभद्र के कारण बनी।)

बुद्धि बढ़ाने के सरल उपाय

-आ. कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., शत-शत वंदन.....)

बुद्धि बढ़ाने के विभिन्न उपाय, अध्ययन-मनन-चिन्तन-ध्यान।
जिज्ञासु प्रवृत्ति परीक्षण-निरीक्षण, भ्रमण-प्राणायाम-व्यायाम-विश्राम।।

शुद्ध सात्विक शाकाहार भोजन, गौ दूध घी अखरोट बादाम।
केला नारियल अँगुर सेब, ब्राह्मी सेवन व बादाम तेल मर्दन।। (1)

एकाग्रता निराकुल-शांत जीवन, सक्रिय-व्यवस्थित सादा जीवन।
महान् लक्ष्य सह पावन भाव युक्त, तनाव-दबाव अस्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा रिक्त।।

नये-नये कार्य करना व सीखना, सभी इन्द्रिय मन सहित सीखना।

सही व गलत दोनों से सीखना, सीखते-सिखाते बुद्धि को बढ़ाना।। (2)

भोजन में भी गुण-दोष समझना, भक्षाभक्ष व पत्थ्यापत्थ्य समझना।
शुचिस्थान में शांति से भोजन करना, भोजन की शुचिता उपयोगिता समझना।।

नवीन-नवीन शब्द ज्ञान भी करना, पर्यायवाची शब्द-अर्थ को समझना।
संदर्भानुसार शब्दार्थ जानना, रूढ़ि-व्युत्पत्ति-शिक्षा रहस्य जानना।। (3)

नवीन-नवीन विविध विषय/(साहित्य) को पढ़ना, एकाग्रता-शीघ्रता-शांति से पढ़ना।
दिमाग इसी से सक्रिय व सुग्राही बनेगा, आँख-दिमाग में तालमेल भी बढ़ेगा।।

नाना मानसिक नक्शा चित्र बनाना, घटना-रास्ता व कल्पना (का) बनाना।
इसी से न्यूरोन सक्रिय भी बनते, परस्पर संबंध भी खूब बनाते।। (4)

धार्मिक उपदेश सुनना-संगीत सुनना, परहित हेतु विचार भी करना।
ज्ञानदान, ज्ञानी की सेवा-संगति करना, प्राकृतिक वातावरण में भ्रमण करना।।

उत्तम भाव से प्रार्थना-प्रणाम करना, ईर्ष्या द्वेष घृणा कामातुर न होना।
फैशन-व्यसन व आडंबर न करना, बुद्धिवर्द्धक उपाय (ये) 'कनक' ने भी जाना /(माना)।। (5)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 11.02.2016, रात्रि 8.47

(बड़ी आसानी से बढ़ता है दिमाग (रीता एक्का) के लेख से भी प्रेरित यह कविता।)

शोधपूर्ण कविता

स्वाध्याय से तन-मन-आत्मा होते हैं स्वस्थ्य

(धार्मिक एवं वैज्ञानिक कारण)

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., भातुकली....., सायोनारा.....)

स्वाध्याय होता है परम तप...तन-मन-आत्मा होते हैं स्वस्थ्य...
अज्ञान-मोह का होता विनाश...हित ग्रहण व अहित त्याग...

स्वाध्याय होता स्व-आत्म का ज्ञान...सत्य-असत्य का परिज्ञान...
आत्मा का हित है अनंत सुख...अनंत ज्ञान दर्शन वीर्य प्रमुख...(1)...

समता-शांति-क्षमा-सहिष्णुता...सहज-सरल-मृदुता-शुचिता...
ये सब होते हैं आत्मिक गुण...स्वाध्याय से होता इनका ज्ञान...

स्वाध्याय से मन की एकाग्रता...इन्द्रिय निग्रह (व) तन की स्थिरता...
आत्मिक गुणों का होता विकास...पापकर्मों का भी होता विनाश...(2)...

जिससे तन-मन होते स्वस्थ्य...समता-शांति का होता विकास...
आत्मविशुद्धि भी बढ़ती ही जाती...समता-शांति भी बढ़ती जाती...

परम एकाग्र मन जब हो जाता...घातिकर्म तब संपूर्ण नशता...
अनंत ज्ञान दर्शन सुख (वीर्य) प्रगटते...सर्व रोग सदा के लिए नशते...(3)...

अघाति कर्म भी नाश होने से...अजर-अमर पद प्राप्त तभी से...
सच्चिदानन्दमय जीव बनते...शुद्ध-बुद्ध आनंदमय होते...

यह है स्वाध्याय का परम फल...सांसारिक सुख है सामान्य फल...
आधुनिक विज्ञान भी मान रहा है...स्वाध्याय से स्वास्थ्य लाभ होता है...(4)...

मात्र छह मिनट के अध्ययन से लाभ...विकसित होता विश्लेषण कौशल...
एकाग्रता व मेमोरी भी बढ़ती...माँसपेशियों के खिंचाव में कमी आती...

हार्टबीट भी तेज न चलती...ट्रेस में अधिक गिरावट आती...
डिमेंशिया का खतरा कम होता...ज्ञानानंद रस का पान भी होता...(5)...

स्वाध्याय से जब मिले आत्मिक सुख...तन-मन सुख तो सामान्य सुख...
अतएव स्वाध्याय परम तप...'कनकनन्दी' सदा स्वाध्याय में रत...(6)...

(विशेष परिज्ञान हेतु कविकृत शोधपूर्ण कृति ''समग्र विकास के उपाय : स्वाध्याय'' (स्वाध्याय से तन-मन-आत्मा के स्वास्थ्य एवं विकास) का अध्ययन करें।)

संदर्भ-

एक रिसर्च में पता चला है कि एक अच्छी किताब मात्र 6 मिनट के लिए भी पढ़ी जाए तो माँसपेशियों के खिंचाव में राहत मिलती है, हार्टबीट तेज नहीं चलती, स्ट्रेस में 60 फीसदी तक गिरावट आती है। साथ ही मैमोरी बढ़ती है, विश्लेषण का कौशल विकसित होता है, इंसीडेंटल डिमेंशिया का खतरा कम होता है और एकाग्रता की क्षमता बढ़ती है। एक तुलनात्मक अध्ययन से पता चला है कि रीडिंग कई अन्य गतिविधियों की तुलना में कहीं ज्यादा स्ट्रेस से राहत दिलाती है।

हितकारी व अहितकारी ज्ञान

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., तुम दिल की.....)

उथली जानकारी खण्डित ज्ञान, अति भयंकर है विपरीत ज्ञान।
हिताहित विवेक सह अल्प सुज्ञान, हितकारी होता है अनुभव ज्ञान।।

हित की प्राप्ति (व) अहित परिहार, विवेक सहित ज्ञान होता सुज्ञान।
इसी से विपरीत होता कुज्ञान, संकीर्ण एकांगी अनुभव शून्य ज्ञान।।

सत्य को असत्य, असत्य को सत्य, अहित को हित, हित को अहित।
अपूर्ण को पूर्ण, पूर्ण को अपूर्ण, हेय को उपादेय, उपादेय को हेय।। (1)

अनुभव रहित उथला जो ज्ञान, स्व-पर अपकारी विशाल ज्ञान।
आचरण रहित जो सब ज्ञान, नहीं होते हैं यथार्थ सुज्ञान।।

सुज्ञान होता है उपकारी ज्ञान, आचरण युक्त अनुभव ज्ञान।
समन्वय युक्त (व) सापेक्ष सहित, क्रमबद्ध (व) सूक्ष्मता सहित।। (2)

इसी हेतु चाहिये स्वाध्याय मनन, संकीर्णता व पूर्वाग्रह विसर्जन।
सनम्र सत्यग्राही जिज्ञासु मन, शोध-बोध व चिन्तन ध्यान।।

जिससे ज्ञान में होता विकास, पूर्व अपूर्ण ज्ञान का होता आभास।
अपूर्व ज्ञान हेतु होता प्रयास, जिससे ज्ञान में होता तीव्र विकास।। (3)

अन्यथा कुज्ञानी या अल्पज्ञानी, स्व-ज्ञान में ही होता अभिमानी।
नहीं बनता सुज्ञानी (या) महाज्ञानी, कुपमण्डुक सम संकीर्ण ज्ञानी।।

ज्ञान है आत्मा का निज स्वभाव, ज्ञानानंदमय आत्मा का भाव।
आत्मज्ञान प्राप्त करना जीव का धर्म, 'कनकनन्दी' का शुद्ध स्वधर्म।। (4)

संदर्भ-

सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतरागी, हितोपदेशी जिनेन्द्र भगवान् अखिल चराचर विश्व के त्रिकालवर्ती द्रव्य गुण पर्यायों को एक साथ स्पष्ट जानते हुए भी एक साथ एक समय में उनका प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं क्योंकि अनंत ज्ञानी सर्वज्ञ होने के कारण सकल ज्ञेय को तो युगपत् जान लेते हैं परन्तु शब्द में सीमित शक्ति होने के कारण

संपूर्ण ज्ञेय का प्रतिपादन युगपत् नहीं कर पाते हैं। इसीलिये प्रतिपादन के समय में जिसका वर्णन कर रहे हैं वह तो मुख्य हो जाता है एवं अन्य गौण हो जाते हैं। गौण होते हुए भी उनकी सत्ता रहती है। अन्य समय में जब अन्य एक विषय का प्रतिपादन करते हैं तब पूर्व प्रतिपादित विषय गौण हो जाता है तथा तत्कालिक प्रतिपादित विषय मुख्य हो जाता है। इसी प्रकार रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग होते हुए भी कभी सापेक्ष दृष्टि से सम्यग्ज्ञान को मोक्ष का कारण या कभी सम्यक् चारित्र को मोक्ष का कारण या कभी सम्यग्दर्शन को मोक्ष का कारण कहा है इसी प्रकार जिनशासन में प्रतिपादित पाया जाता है। मूलाचार, भगवती-आराधना आदि चरणानुयोग शास्त्र में विशेषतः चारित्र को मोक्ष का कारण कहा गया है। समयसारादि आध्यात्मिक शास्त्र में सम्यग्ज्ञान को मोक्ष का कारण प्रतिपादित किया गया है। यथा।

अथ कथं ज्ञानमात्रादेव बन्ध निरोध इति पूर्वपक्षे कृते परिहारं ददाति।

ज्ञान प्राप्त कर ज्ञानी हो जाने से निर्बन्ध कैसे होता है अर्थात् बंध का निरोध कैसे करता है? उसका उत्तर देते हैं-

णादूण आसवणं असुचित्तं च विवरीय भावं च।
दुक्खस्स कारणं पि य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।।77।। (समयसार)

जब यह जीव आस्त्रवों के अशुचिपने को, जड़ता रूप विपरीतपने को और दुःख के कारणपने को जान लेता है तब अपने आप उनसे दूर रहता है।

क्रोधादि आस्त्रवों के कलुषतारूप अशुचिपने को जड़तारूप विपरीतपने को जानकर उसके द्वारा स्वसंवेदन ज्ञान को प्राप्त होने के अनंतर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में एकाग्रता रूप परम् सामायिक में स्थित होकर यह जीव क्रोधादिक आस्त्रवों की निवृत्ति करता है अर्थात् अपने आप दूर रहता है। इस प्रकार ज्ञान मात्र से ही बंध का निरोध नहीं सिद्ध हो जाता है। यहाँ सांख्यमत सरीखा ज्ञान मात्र से बंध का निरोध माना गया है। (किन्तु वैराग्यपूर्ण ज्ञान को ज्ञान कहा गया है और उससे बंध का निरोध होता है) किं च? हम तुमसे पूछते हैं कि आत्मा और आस्त्रव संबंधी जो भेदज्ञान है वह रागादि आस्त्रवों से निवृत्त है या नहीं? यदि कहो कि निवृत्त है तब तो उस भेदज्ञान में पानक-पीने की वस्तु ठंडाई इत्यादि के समान अभेदनय से वीतराग चारित्र और वीतराग सम्यक्त्व भी है ही। इसी प्रकार सम्यग्ज्ञान से ही बंध का निरोध सिद्ध हो जाता है, और यदि वह भेदज्ञान रागादि से निवृत्त नहीं है तो वह सम्यग्भेदज्ञान

ही नहीं है।

यहाँ पर आचार्य देव ज्ञान शब्द से सम्यक्दर्शन, सम्यक्चारित्र का भी ग्रहण किये हैं क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से विषय वासना से रहित संसार, शरीर, भोगों से विरक्त रूप वीतराग ज्ञान को ही ज्ञान रूप से स्वीकार किया गया है। कुंदकुंद स्वामी ने मूलाचार में कहा भी है।

जेण रागा विरज्जेज्ज जेण सेएसु रज्जदि।

जेण मित्तीं पभावेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।268।। (मूलाचार)

जिसके द्वारा जीव राग से विरक्त होता है, जिसके द्वारा मोक्ष में राग करता है, जिसके द्वारा मैत्री को भावित करता है जिनशासन में वह ज्ञान कहा गया है।

न्याय ग्रंथ के रचियता आचार्यश्री माणिकनंदी ने इसी सत्य को उजागर किया है-

हिताहित प्राप्ति परिहार समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्।। 'परीक्षामुख'।।2।।

जिससे हित की प्राप्ति अहित का परिहार होता है वह प्रमाण है जो कि सम्यग्ज्ञान स्वरूप है।

अज्ञान निवृत्तिहानोपादानोपेक्षाश्च फलम्। (परीक्षामुख सूत्र 1 अध्याय 5)

अज्ञान की निवृत्ति अहित का त्याग, हित की प्राप्ति, वीतराग स्वरूप निरपेक्षरूप समता भाव यह सम्यग्ज्ञान का फल है।

उपरोक्त सिद्धांत से सिद्ध होता है कि केवल ज्ञान मोक्ष का कारण नहीं है और केवल अज्ञान बंध का कारण नहीं है। इस सत्य का प्रतिपादन करते हुए तार्किक चूड़ामणि महान् दार्शनिक संत आचार्य समंतभद्र स्वामी ''आत्म मीमांसा'' में कहते हैं-

आज्ञानाच्चोद्ध्रुवो बन्धो ज्ञेयानन्त्यान्न केवली।

ज्ञानस्तोकाद्विमोक्षश्चेदज्ञानाद्बहुतोऽन्था।।96।।

यदि एकान्ततः अज्ञानता से बंध होता है ऐसा मान लिया जाये तब ज्ञेय अनंत होने से छद्मस्थ (12 गुणस्थान तक का असर्वज्ञ जीव) जीव अनंत ज्ञेय को नहीं जान सकता है तब वह केवली या मुक्त नहीं हो सकता है। इससे सिद्ध होता है कि केवल अज्ञानता ही बंध का कारण नहीं है। यदि अल्प ज्ञान से मोक्ष होता है मान लिया जाये तब अधिक ज्ञानी होने से शीघ्र मोक्ष हो जायेगाँ इसलिये अज्ञानता भी मोक्ष के

लिये कारण नहीं है। मोक्ष का समर्थ कारण क्या है? इसका प्रतिपादन आचार्य देव ने स्वयं निम्न प्रकार किया है-

अज्ञानान्मोहिनो बन्धो नाऽज्ञानाद्वित मोहतः।

ज्ञानस्तोकाच्च मोक्षः स्यादमोहान्स्मोहिनोऽन्यथा।।98।। (देवागमवृत्ति)

मोह सहित अज्ञानता से बंध होता है, मोह रहित अज्ञानता से बंध नहीं होता है। मोह दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय की अपेक्षा दो प्रकार का है। दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय सहित अज्ञान-(अल्पज्ञ) से बंध होता है। परन्तु दर्शन मोहनीय एवं चारित्र मोहनीय रहित अज्ञानता से बंध नहीं होता है। इससे सिद्ध होता है कि मोह रहित अल्प ज्ञान से मोक्ष हो सकता है, मोह सहित ज्ञान से अथवा विपुल ज्ञान से अथवा विपुल मिथ्याज्ञान से बंध होता है।

किमथमेव मोक्षमार्ग?

क्या यही मोक्ष का मार्ग है? इसका समाधान करते हैं-

बंधाणं च सहावं वियाणिदु अप्पणो सहावं च।

बंधेसु जो ण रज्जदि सो कम्मविमोक्खणं कुणदी।।315।। (समयसार)

बंध के स्वभाव को और आत्मा के स्वभाव को जानकर के जो पुरुष विरक्त होता है वही कर्मों को काट सकता है।

भाव बंध मिथ्यात्व और रागादिक है। उनके स्वभाव को जानकर हेय-उपादेय के विषय में विपरीत मान्यता अर्थात् हेय को उपादेय और उपादेय को हेय समझना मिथ्यात्व कहलाता है। पंचेन्द्रियों के विषय में इष्ट और अनिष्ट का विचार होना रागादिक का स्वभाव है उसे जानकर केवल बंध स्वभाव ही को नहीं परन्तु आत्मा के अनंत ज्ञानादि स्वभाव को जानकर द्रव्य बंध के हेतुभूत मिथ्यात्व और रागादि रूप भाव बंध है उनमें निर्विकल्प समाधि के बल से रंजायमान नहीं होता सो वह कर्मों का नाश करता है।

सम्यक् श्रद्धा एवं सम्यक् चारित्र रहित विपुल मतिज्ञान तथा श्रुतज्ञान से मोक्ष नहीं हो सकता है। इतना ही नहीं मोक्ष के साधक रूप श्रमण भी नहीं हो सकता है। यह बाद कुंदकुंद स्वामी ने भावप्राभृत में सोदाहरण निम्न प्रकार वर्णन किया है-

अंगाइं दस य दुण्णि य चउदस पुव्वाइं सयल सुयणाणो।

पढ़िओ अभव्वसेणो ण भाव सवणत्तणं पत्तो।।52।। (भावप्राभृत)

द्वादशांग एवं चतुर्दश पूर्वात्मक सकल श्रुतज्ञान को पढ़कर भी भव्यसेन मुनि भावश्रमण नहीं हुए थे।

भव्यसेन मुनि सम्यग्दर्शन से रहित होने के कारण वह केवल श्रुतज्ञान को केवल शब्द से एवं अर्थ से पढ़े थे किन्तु भावात्मक रूप से अनुभव नहीं किये थे। शब्द और अर्थ से भी पूर्ण द्वादशांग का अध्ययन नहीं किये थे किन्तु एकादश अंग का पठन किये थे। द्वादशांग तथा चतुर्दश पूर्व का अध्ययन अभव्य मिथ्यादृष्टि नहीं कर सकता है। सकल श्रुतज्ञान का अध्ययन करने वाला महामुनिश्वर, श्रुतकेवली, गणधर या सौधर्मइन्द्र, सर्वार्थसिद्धि के देव आदि परीत संसारी जीव हो सकते हैं। कहा भी है-

आध्यात्मिक शब्द ज्ञान जीव को मोक्ष प्राप्त कराने के लिए अकिञ्चत्कर हैं। इस सिद्धांत को जैन आध्यात्मिक साधक के साथ-साथ जैनेत्तर साधकों ने भी स्पष्ट रूप से स्वीकार किया हैं-

वीणाया रूप सौन्दर्य तन्त्रीवादन सौष्ठम्।

प्रजारञ्जन मात्रं तन्न साम्राज्याय कल्पते।।59।। (विवेक-चूड़ामणि)

वाग्वैश्वरी शब्द झरी शास्त्रव्याख्यानकौशलम्।

वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये।।60।।

जिस प्रकार वीणा का रूप लावण्य तथा तंत्री को बजाने का सुंदर ढंग मनुष्यों के मनोरंजन का ही कारण होता है, उससे कुछ साम्राज्य की प्राप्ति नहीं हो जाती, उसी प्रकार विद्वानों की वाणी की कुशलता, शब्दों की धारावाहिकता, शास्त्र व्याख्यान की कुशलता और विद्वत्ता भोग ही का कारण हो सकती है, मोक्ष का नहीं।

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।

विज्ञातेऽपि परे तत्त्वे शास्त्रधीतिस्तु निष्फला।।61।।

परम तत्त्व को यदि न जाना तो शास्त्राध्ययन निष्फल (व्यर्थ) ही है, और यदि परम तत्त्व को जान लिया तो शास्त्राध्ययन निष्फल (अनावश्यक) ही है।

शब्दजालं महारण्यं, चित्त भ्रमण कारणम्।

अतः प्रयत्नाज्ज्ञातव्यं तत्त्वज्ञातत्त्वमात्मनः।।62।।

शब्दजाल तो चित्त को भटकाने वाला एक महान् वन है, इसलिए किन्हीं तत्त्वज्ञानी महात्मा से प्रयत्नपूर्वक आत्म तत्त्व को जानना चाहिए।

अज्ञान सर्पदष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं विना।

किमु वैदैश्च शास्त्रैश्च किमु मंत्रैः किमौषधैः।।63।।

अज्ञान रूपी सर्प से डँसे हुए को ब्रह्मज्ञान रूपी औषधि के बिना वेद से, शास्त्र से, मंत्र से और औषध से क्या लाभ?

न गच्छति विना पानं व्याधिरौषशब्दतः।

विनापरोक्षानुभवं ब्रह्मशब्दैर्न मुच्यते।।64।।

औषधि को बिना पिये केवल औषधि-शब्द के उच्चारण मात्र से रोग नहीं जाता, इसी प्रकार अपरोक्षानुभव के बिना केवल ''ब्रह्म-ब्रह्म'' कहने से कोई मुक्त नहीं हो सकता।

अकृत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिल भूश्रियम्।

राजाहमिति शब्दान्नो राजा भवितुमर्हति।।66।।

बिना शत्रुओं का वध किये और बिना संपूर्ण पृथ्वी मण्डल का ऐश्वर्य प्राप्त किये, मैं राजा हूँ-ऐसा कहने से ही कोई राजा नहीं हो जाता।

आप्तोक्तिं खननं तथोपरिशिलाद्युत्कर्षणं स्वीकृतिं।

निक्षेपः समपेक्षते न हि बहिः शब्दस्तु निर्गच्छति।।

तद्वद् ब्रह्मविदोपदेशमननध्यानादिभिर्लभ्यते।

माया कार्यतिरोहितं स्वममलं तत्त्व न दुर्युक्तिभिः।।67।।

(पृथ्वी में गढ़े हुए धन को प्राप्त करने के लिए जैसे) प्रथम किसी विश्वसनीय पुरुष के कथन की, और फिर पृथ्वी को खोदने, कंकड़-पत्थर आदि को हटाने तथा (प्राप्त हुए धन को) स्वीकार करने की आवश्यकता होती है-कोरी बातों से वह बाहर नहीं निकलता, उसी प्रकार समस्त मायिक प्रवञ्च से शून्य निर्मल आत्म तत्त्व भी ब्रह्मवित् गुरु के उपदेश तथा उसके मनन और निदिध्यासनादि से ही प्राप्त होता है, थोथी बातों से नहीं।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन भववन्धविमुक्तये।

स्वैरेव यतः कर्तव्यो रोगादिविव पण्डितैः।।69।।

इसलिए रोग आदि के समान भव-बंध की निवृत्ति के लिए विद्वान को अपनी संपूर्ण शक्ति लगाकर स्वयं ही प्रयत्न करना चाहिए।

द्रव्य दृष्टि से शक्ति रूप से अभव्य निगोदिया जीव से लेकर छद्मस्थ अवस्था

तक आत्मा शुद्ध होते हुए भी पर्याय रूप से, व्यक्त रूप से आत्म द्रव्य अशुद्ध है। उस शक्ति को व्यक्तिकरण करने के लिए जो आध्यात्मिक प्रणाली है उसको आचरण कहते है। आचरण शुद्धि से ही आत्मा द्रव्य में शुद्धि आती है एवं द्रव्य शुद्धि से ही आचरण में शुद्धि आती है।

कहा भी है-

दृव्यानुसारि चरणं चरणानुसारिद्रव्यं,
मिथो द्वयमिदं ननु सव्यपेक्षम्।
तस्मान्मुमुक्षुरधिरोहतु मोक्षमार्ग,
द्रव्यं प्रतीत्य यदि वा चरणं प्रतीत्य।।12।। (प्रवचनसार तृतीयम्)

चरण द्रव्यानुसार होता है और द्रव्य चरणानुसार होता है। इस प्रकार वे दोनों परस्पर सापेक्ष हैं, इसलिये या तो द्रव्य को आश्रय लेकर अथवा चरण का आश्रय लेकर मुमुक्षु (ज्ञानी, मुनि) मोक्ष मार्ग में आरोहण करो।

द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धै।
बुद्धध्वेति कर्मांविरताः परेऽपि द्रव्याविरुद्धं चरणं चरंतु।।13।।

द्रव्य की सिद्धि में चरण की सिद्धि है और चरण की सिद्धि में द्रव्य की सिद्धि है- यह जानकर, कर्मों से (पापों से) अविरत तथा अन्य भी, द्रव्य से अविरुद्ध चरण का आचरण करो अर्थात् चारित्र का पालन करो।

केवल बौद्धिक या शास्त्रीय ज्ञान से चारित्र न होने पर मोक्ष प्राप्ति तो अत्यंत दूर है किन्तु सुगति भी प्राप्त होना दुष्कर है। कुंदकुंद स्वामी ने कहा भी है-

जहं विसय लोलएहिं णाणीहिं हविज्ज सहिदो मोक्खो।
तो सो सच्चइ पुत्तो दस पुव्वीओ वि किं गदो णरय।।30।। (शील पाहुड़)

यदि विषय कषाय से लिप्त होते हुए ज्ञान से ही मोक्ष होता है तो बताओ दश पूर्व के ज्ञाता सात्यकी पुत्र क्यों नरक गया? कहने का भावार्थ यह है कि सात्यकी का पुत्र ज्ञानी होते हुए भी विषयों में रत होने के कारण मोक्ष की प्राप्ति तो दूर ही रही सुगति भी नहीं मिली परन्तु उनको नरक जाना पड़ा। इसलिये विपुल प्रकाण्ड बौद्धिक एवं शास्त्रीय ज्ञान मोक्ष के लिए विशेष सहकारी नहीं है-

बहुयईं पढियइँ मूढ पर, तालु सुक्कइ जेण।
एक्कजु अक्करू तं पढहु सिवपुरी गम्मइ जेण।।

रे मूढ़ बहिरात्मन! बहुत ही शास्त्र का पठन किया जिसमें तालू सूख गया परन्तु शाश्वतिक सुख या आत्मज्ञान नहीं मिला। अभी तू अंतरात्मा होकर एक भी अक्षर पढ़ जिससे तुमको शिवपुर की गति मिले। कबीरदास ने कहा है-

पोथी पढ़-पढ़ जगमुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का (आत्मा) पढ़े सो पंडित होय।।
जो णवि जाणइ अप्पु परु णवि भाई चएइ।
सो जाणउ सत्थेइ सयल ण हु सिव सुक्खु लहेइ।।96।। (योगसार)

जो न तो परमात्मा को जानता है और न परभाव का त्याग ही करता है, वह भले ही समस्त शास्त्रों को जान जाय, परन्तु वह मोक्ष सुख को प्राप्त नहीं करता।

इससे विपरीत अल्पज्ञ भी चारित्र एवं भावशुद्धि के माध्यम से संपूर्ण कर्मबंधनों का विध्वंस करके शुद्ध नित्य निरंजन पदवी को प्राप्त किये है।

तुसमासं घोसंतो भाव विसुद्धो य महाणुभावो य।
णामेण य सिव भूई केवलणाणी फुंड जाओ।।53।। (भाव पाहुड़)

शिवभूति नामक एक अल्पज्ञ मुनि तुस मास रटते हुए सचारित्र रूप भाव विशुद्धि से सर्वज्ञ सर्वदर्शी बन गये।

आगम में ऐसे अनेकों प्रमाण मिलते हैं जिससे ज्ञात होता है कि अनेक मुनिश्वरों को णमोकार मंत्र भी नहीं आता था इतना ही नहीं गुरु प्रदत्त ''मा रूसह मा तूसह'' शब्द का भी ज्ञान नहीं था तो भी निर्मल चारित्र रूप भाव विशुद्धि से श्रेणी आरोहण करके लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान रूप सूर्य को प्राप्त कर गये, परन्तु सच्चारित्र के बिना सर्वार्थसिद्धि के देव जो कि क्षायिक सम्यक्दृष्टि, बाल-ब्रह्मचारी एवं सतत् तत्त्व चिंतन करने वाले 33 सागर तक आत्मचिंतन करते हुए भी मोक्ष की बात तो दूर है किन्तु देशव्रत रूप श्रावकावस्था तथा सर्व विरति रूप मुनि अवस्था को भी प्राप्त नहीं कर सकते हैं।

उपरोक्त प्रतिपादन से यह सिद्धांत प्रतिफलित नहीं होता है कि मोक्ष मार्ग में सम्यक्ज्ञान का योगदान कुछ है ही नहीं परन्तु जो ज्ञान को प्राप्त करके तदनुकूल आचरण नहीं करता है उसके लिए मोक्ष प्राप्ति के निमित्तभूत यह ज्ञान विशेष कार्यकारी नहीं है। कुंदकुंद देव ने कहा है-

णाणस्स णत्थि दोसो कुप्पुरिसाणो वि मंद बुद्धिणो।

जे णाणगव्विदा हऊणं विसएसु रज्जंति।।10।। (शील पाहुड़)

जो कुपुरुष मंद बुद्धिजन ज्ञान से गर्वित होकर विषयों में रचता, पचता है उसमें ज्ञान का कोई दोष नहीं है।

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।

उम्मग्गं दरसीणं णाणं णिरत्थयं तेसिं।।23।। (शील पाहुड़)

जो विषयों में मोहित है, जो उन्मार्गगामी इष्टदर्शी द्वारा कथित मार्ग के ज्ञान के ज्ञाता होते हुए भी उनका ज्ञान निरर्थक है।

जदि पडदि दीवहत्थो अवडे किं कुणदि तस्स सो दीवो।

जदि सिकिखऊण अणयं करेदि किं तस्स सिक्खफलम्।।

हस्त में दीपक होते हुए भी और कुएँ को देखते हुए भी जो कुएँ में गिरता है उसके हस्त में स्थित दीपक क्या कर सकता है? क्या गिरते हुए मनुष्य को दीपक बचा सकता है? कदापि नहीं। अथवा दीपक हस्त मनुष्य कुएँ में गिरने पर दीपक का कोई दोष होगा? कदापि नहीं होगा। इस प्रकार जो ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करके भी ज्ञानानुसार आचरण नहीं करता, उसकी शिक्षा के ज्ञान का क्या फल रहा? अर्थात् कोई नहीं।

बहुगंपि सुदमधदिं किं काहदि अजाण माणस्स।

दीव विसेसो अंधे णाण विसेसो वि तह तस्स।।

जो आत्मज्ञान से रहित है वह बहुश्रुत का अध्ययन करने पर भी क्या करेगा? जैसे-अंधे के लिए दीपक कोई विशेष कार्यकारी नहीं है उसी प्रकार वीतराग चारित्र अविनाभावी वीतराग ज्ञान या चारित्र सम्पन्न ज्ञान रहित उसका विपुल श्रुतज्ञान क्या करेगा?

शास्त्राग्नौ मणिवद्भव्यो विशुद्धो भाति निर्वृत्तः।

अंगास्वत् खलो दीप्ते मली वा भस्म वा भवेत्।।76।। (आत्मानुशासन)

शास्त्र रूप अग्नि में प्रविष्ट हुआ भव्य जीव तो मणि के समान विशुद्ध होकर मुक्ति को प्राप्त करता हुआ शोभायमान होता है। किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव (अभव्य) उस शास्त्र रूप अग्नि में प्रदीप्त होकर मलिन व भस्म स्वरूप हो जाता है।

यस्य नास्ति विवेकस्तु केवलं यो बहुश्रुतः।

न स जानाति शास्त्रार्थान् दर्वी पाक रसानिव।।

जो हिताहित विवेक से रहित होकर बहुश्रुतज्ञ है वह शास्त्रों के रहस्य को नहीं

जान सकता है। जैसे-चम्चा विभिन्न रस युक्त व्यंजनों से लिप्त होने पर भी रस को नहीं जान सकता है। इसीलिये कौटिल्य चाणक्य ने भी कहा है-

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्र तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति।।

जिसकी स्वयं की प्रज्ञा शक्ति नहीं है उसके लिए शास्त्र क्या कर सकता है? जिसकी दृष्टि शक्ति नहीं है उसके लिए दर्पण क्या करता है? अर्थात् अंधा व्यक्ति स्वच्छ से स्वच्छ बड़े से बड़े दर्पण में अपना मुख नहीं देख सकता है, उसी प्रकार विषयान्ध व्यक्ति आत्मा का दर्शन नहीं कर सकता है क्योंकि विषय वासना रूपी घन परदा उनके प्रज्ञारूप चक्षु को आवृत्त करके रखती है।

अन्धादयं महानन्धो विषयान्धी कृते क्षणः।
चक्षुषान्धो न जानाति विषयान्धो न केनचित्।।35।। (आत्मानुशासन)

जिसके नेत्र इन्द्रिय विषयों के द्वारा अंधे कर दिये गये हैं अर्थात् विषयों में मुग्ध रहने से जिसकी विवेक बुद्धि नष्ट हो चुकी है ऐसा यह प्राणी उस प्रसिद्ध अंधे से भी अधिक अंधा है क्योंकि अंधा प्राणी तो केवल चक्षु के ही द्वारा नहीं जान पाता है, परन्तु वह विषयान्ध मनुष्य इन्द्रियों और मन आदि में से किसी के द्वारा भी वस्तु स्वरूप को नहीं जान सकता है।

उपरोक्त कथन एवं उदाहरणों से यह नहीं समझना चाहिए कि सम्यक्ज्ञान मोक्षमार्ग के लिए बाधक है अथवा ज्ञानी लोग विषय वासना में रत रहते हैं। परन्तु उसका रहस्य यह है कि ज्ञान को प्राप्त करके भी यदि तदनुकूल आचरण नहीं करेंगे तथा राग द्वेषात्मक परिणमन करेंगे तो निश्चित रूप से कर्मबंध होगा ही। ''**णाणं पयासणं**'' ज्ञान तो प्रकाश स्वरूप है जैसे अंधकार में कुछ दिखाई नहीं देता है किन्तु प्रकाश होने पर सर्प काँटा, धन, विष, संपत्ति आदि दिखाई देते हैं। परन्तु कोई प्रकाश से विष को पहिचानकर भी विषपान करेगा तो प्रकाश विषपान करने से रोकेगा नहीं तथा प्रकाश में भी विषपान करने से विष का परिणाम तो होवेगा ही। उसी प्रकार ज्ञान होते हुए भी पर वस्तु के प्रति आकर्षण-विकर्षण होने पर कर्मास्त्रव एवं बंध होगा जिससे संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा। परन्तु ज्ञान में एवं चारित्र में विरोध नहीं है किन्तु उत्तरोत्तर ज्ञान बुद्धि होने पर चारित्र में विशुद्धता आती है जिससे चारित्र भी उत्तरोत्तर वर्धमान होता है।

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो।

णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणसंति।।24।। (शील पाहुड़)

अनंत केवली बुद्धों द्वारा निर्दिष्ट चारित्र एवं ज्ञान का परस्पर कोई विरोध नहीं है। अपरंच शील के बिना विषय सुख से ज्ञान का विनाश हो जाता है।

णाणं णाऊण णरा कोई विसयाइ भाव संसत्ता।

हिंडति चदुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढ़ा।।7।।

कुछ मनुष्य ज्ञान को जानते हुए भी विषय वासना से भावित होकर विषयों में विमोहित मूढ़ होकर चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण करते हैं।

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोराणं।

सव्वेसिं पि विणासदि विसयविसं दारूणं होई।।21।। (शील पाहुड़)

स्थावर, जंगम विष से भी विषय रूपी विष अत्यंत भयंकर है। विषय रूपी विष से सुगति, मोक्षगति आदि विनाश हो जाती है। विषय रूपी विष अत्यंत दारूण है।

वारि एकम्मि य जम्मे सरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो।

विसयविसपरिहराणं भमंति संसार कांतारे।।22।। (शील पाहुड़)

विषपान से एक बार मरण करके अन्य गति में जीव उत्पन्न होता है। परन्तु विषय रूपी विष सेवन से संसार रूपी वन में अनेक बार परिभ्रमण करना पड़ता है।

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसण विहणं।

संजमहीणो य तवो जई चरइ णिरत्थयं सव्वं।।5।। (शील पाहुड़)

चारित्रहीन ज्ञान, दर्शन विहीन मुनि वेषादि धारण, इन्द्रिय मन एवं प्राणी संयम रहित तप जो आचरण करता है वह सर्व निरर्थक होता है।

उपरोक्त नानाविध उदाहरण एवं कथन प्रणालियों से यह सिद्ध होता है कि रत्नत्रय परस्पर विरोधी या घातक नहीं है परन्तु परस्पर अनुपूरक-परिपूरक तथा सहकारी है क्योंकि सम्यग्दर्शन से ज्ञान में सम्यक्पना आता है। सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान से चारित्र में सम्यक्त्वपना आता है तथा चारित्र दृढ़ एवं उत्तरोत्तर विशुद्ध होता है। सम्यग्दर्शन तो प्रसाद (भवन) के लिए नींव के समान आधारशिला है। बिना सम्यग्दर्शन के रत्नत्रय रूप प्रासाद नहीं टिक सकता है। नींव के बिना प्रासाद नहीं टिकने पर भी नींव ही प्रासाद नहीं है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के बिना रत्नत्रय रूप महल नहीं टिकने पर भी सम्यग्दर्शन ही रत्नत्रय नहीं है।

सम्यग्ज्ञान दो कमरे के बीच स्थित देहली के ऊपर रखा हुआ दीपक के सदृश है। जैसे वह दीपक दोनों कमरों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानरूपी दीपक सम्यग्दर्शन तथा सम्यक्चारित्र को प्रकाशित करता है। प्रकाश से हिताहित का परिज्ञान होते हुए प्रकाश स्वयं हित वस्तु को ग्रहण कर अहित वस्तु का परिहार नहीं कर सकता है। श्रद्धा से मानकर ज्ञान से जानकर एवं आचरण से माना हुआ, जाना हुआ कार्य का संपादन होता है। अर्थात् विश्वसनीय एवं ज्ञात लक्ष्य बिन्दु को प्राप्त करने के लिए तदनुकूल पुरुषार्थ के माध्यम से लक्ष्य बिन्दु में पहुँचकर लक्ष्य की पूर्ति कर लेते हैं।

स्व-परोपकारी आचार्य की शिक्षा पद्धति

(आचार्य स्व-शिष्यों को 'मूढ' 'अज्ञ' आदि क्यों कहते?!)

(चाल : आत्मशक्ति.....)

परम उदार परम उपकारी गुरु भी स्व-शिष्यों को बोलते है 'मूढ'?!
इसी से गुरु को न दोष लगता, शिष्यों का होता बहु उपकार।। (1)

अनादि कालीन अज्ञान-मोह से, जीव/(शिष्य) न जानते है परम सत्य।
काम-भोग व बंध को ही जानते, मानते है यथार्थ सत्य।। (2)

इसी से परे है परम सत्य जो, अनादि काल से न जान पाये।
उनसे अनभिज्ञ भव्यों (शिष्यों) को, मूढ शब्द से संबोधन करते।। (3)

जिससे शिष्य जाने स्व-अज्ञान मोह को, तथाहि त्याग हेतु करे प्रयास।
जिससे शिष्यों का होता आत्म विकास, परम्परा से मिले स्वर्ग मोक्ष।। (4)

स्व-शिष्यों के छोटे से भी दोष, गुरु बड़ा करके बोलते है बारंबार।
जिससे शिष्य सतर्क होकर दोषों को जानकर करते है परिहार।। (5)

अधिकांश शिष्य चतुर्थ काल में भी, नहीं होते है प्राज्ञ व सरल।
पंचम काल में तो अधिकांश शिष्य, होते हैं जड़ व कुटिल।। (6)

इसलिये तो इस काल के शिष्यों के हेतु गुरु बोलते बहु बार।
चारों अनुयोग में ऐसा वर्णन हुआ है शत-सहस्र बार।। (7)

अज्ञान मोह या विपरीत ज्ञान या अल्प ज्ञान को ही जो शिष्य सत्य मानते।

जिससे उसकी दुर्गति होती उन्हें बचाने हेतु अज्ञानी/मूढ कहते।। (8)

मैं भी यह सब अनुभव, कर रहा हूँ दीर्घकाल से।
आचार्यों ने जो कहा व लिखा, महत्वपूर्ण है शिक्षा क्षेत्र में।। (9)

शिष्यानुग्रहे कुशल होते है धर्माचार्य जो होते पर उपकारी।
गुण-दोष को विश्लेषण करके, दोष दूर करते शिष्योपकारी।। (10)

शिक्षा-दीक्षा व अनुग्रह-निग्रह से, शिष्यों का उपकार करते (हैं) योग्य धर्माचार्य।
योग्य दयालु वैद्य सम भव रोग, दूर करते (है) योग्य धर्माचार्य।। (11)

निन्दा अपमान व छिन्द्रान्वेषण, ईर्ष्या-द्वेष-घृणा से रहित होकर।
स्व-पर-विश्व उपकार हेतु, लेखन व प्रवचन आदि करते सूरीवर।। (12)

निकट भव्य गुणग्राही शिष्यों के, मन-कमल खिल जाते इसी से।
अभव्य या दूरान्धर भव्यों के, मन-कमल म्लान होते इसी से।। (13)

द्रव्य क्षेत्र काल भाव व पात्रानुसार, व्यवहार करते है विज्ञ-आचार्य।
'कनकनन्दी' भी स्वीकार करता है, जिसे स्वीकार है पूर्वाचार्य।। (14)

गलियाकोट पु.कॉ. सागवाड़ा, दिनांक 14.01.2016, रात्रि 12.00 (मकर सक्रांति)

(यह कविता डॉ. कैलाश जैन के कारण बनी)

संदर्भ-

ऐसे तारण तरण साधु के लिए संपूर्ण विश्व अपने परिवार के समान है। कहा है ''उदार पुरुषाणां तु वसुधैव स्व कुटुम्बकम्'' वे स्वआत्म कल्याण करते हैं और दूसरों के आत्म कल्याण के लिए मनसा-वचसा-कर्मणा से तत्पर रहते हैं। संसार के मोही रागी द्वेषी जीव के दुःख को देखकर उनके कल्याण की भावना भाते हैं और उपदेश देते हैं। इसे ही आगम में अपाय विचय एवं विपाक विचय धर्मध्यान कहा है। दुःखी जीवों के दुःख को देखकर एवं उनकी परिस्थिति को देखकर उनके योग्य उपदेशामृत पान कराते हैं। ऐसे महापुरुष भव्यों को उपदेश देते हैं-

यद्यपि कदाचिदस्मिन् विपाकमधुरं तदात्वकटु किंचित्।
त्वं तस्मान्मा भैषीर्यथातुरो भेषजादुग्रात्।। (3)

यद्यपि इस (आत्मानुशासन) में प्रतिपादित किया जाने वाला कुछ सम्यग्दर्शनादि

का उपदेश कदाचित् सुनने में अथवा आचरण के समय में थोड़ा-सा कडुवा (दुःखदायक) प्रतीत हो सकता है तो भी वह परिणाम में मधुर (हितकारक) ही होगा। इसलिये हे आत्मन्! जिस प्रकार रोगी तिक्ष्ण (कड़वी) औषधि से नहीं डरता है उसी प्रकार तू भी उससे डरना नहीं।

विषयविषमाशनोत्थित - मोहज्वरजनिततीव्रतृष्णास्य।
निःशक्तिकस्य भवतः प्रायः पेयाद्युपक्रमः श्रेयान्।। (17)

विषयरूप विषम भोजन से उत्पन्न हुए मोहरूप ज्वर के निमित्त से जो तीव्र तृष्णा (विषयाकांक्षा और प्यास) से सहित है तथा जिसकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण हो रही है ऐसे तेरे लिए प्रायः पेय (पीने के योग्य सुपाच्य फलों का रस आदि तथा अणुव्रत आदि) आदि की चिकित्सा अधिक श्रेष्ठ होगी।

जना घनाश्च वाचालाः सुलभाः स्युर्वृथोत्थिताः।
दुर्लभा ह्यन्तरार्द्रास्ते जगदभ्युज्जिहीर्षवः।। (4)

जिनका उत्थान (उत्पत्ति और प्रयत्न) व्यर्थ है ऐसे वाचाल मनुष्य और मेघ दोनों ही सरलता से प्राप्त होते हैं किन्तु जो भीतर से आर्द्र (दयालु और जल से पूर्ण) होकर जगत् का उद्धार करना चाहते हैं ऐसे वे मनुष्य और मेघ दोनों ही दुर्लभ हैं।

लोकद्वयहितं वक्तुं श्रोतुं च सुलभाः पुरा।
दुर्लभाः कर्तुमद्यत्वे वक्तुं श्रोतुं च दुर्लभाः।। (143)

पूर्व काल में जिस धर्म के आचरण से इस लोक और परलोक दोनों ही लोकों में हित होता है उस धर्म का व्याख्यान करने के लिए तथा उसे सुनने के लिए भी बहुत से जन सरलता से उपलब्ध होते थे परन्तु तद्नुकूल आचरण करने के लिए उस समय भी बहुत जन दुर्लभ ही थे। किन्तु वर्तमान में तो उक्त धर्म का व्याख्यान करने के लिए और सुनने के लिए भी मनुष्य दुर्लभ है, फिर उसका आचरण करने वाले तो दूर ही रहे।

गुणागुणविवेकिभिर्विहितमप्यलं दूषणं।
भवेत् सदुपदेशवन्मतिमतामतिप्रीतये।।
कृतं किमपि धाष्टर्यतः स्तवनमप्यतीर्थोषितैः।
न तोषयति तन्मनांसि खलु कष्टमज्ञानता।।

जो गुण और दोष का विचार करने वाले सज्जन हैं वे यदि कदाचित् किसी दोष

को भी अतिशय प्रकट करते हैं तो वह बुद्धिमान मनुष्यों के लिए उत्तम उपदेश के समान अत्यंत प्रीति का कारण होता है। परन्तु जो आगमज्ञान से रहित है ऐसे अविवेकी जनों के द्वारा यदि धृष्टता से कुछ प्रशंसा भी की जाती है तो वह उन बुद्धिमान मनुष्यों के मन को संतुष्ट नहीं करती है। निश्चय से वह अज्ञानता ही दुःखदायक है।

दोषान् कांश्चन् तान् प्रवर्तकतया प्रच्छाद्य गच्छत्ययं।
सार्धं तैः सहसा म्रियेद्यदि गुरूः पश्चात्करोत्येष किम्।।
तस्मान्मे न गुरू गुरूर्गुरूतरान् कृत्वा लघूंश्च स्फुटं।
ब्रूते यः सततं समीक्ष्य निपुणंसोऽयं खलः सद्गुरूः।। (141)

यदि यह गुरु शिष्य के उन किन्हीं दोषों की प्रवृत्ति कराने की इच्छा से अथवा अज्ञानता से आच्छादित करके प्रकाशित न करके चलता है और इस बीच में यदि वह शिष्य उक्त दोषों के साथ मरण को प्राप्त हो जाता है तो फिर यह गुरु पीछे क्या कर सकता है? कुछ भी उसका भला नहीं कर सकता है। ऐसी स्थिति में वह शिष्य विचार करता है कि मेरे दोषों को आच्छादित करने वाला वह गुरु वास्तव में मेरा गुरु (हितैषी आचार्य) नहीं है किन्तु जो दुष्ट मेरे क्षुद्र भी दोषों को निरंतर सूक्ष्मता से देख करके उन्हें अतिशय महान् बना करके स्पष्टता से कहता है वह दुष्ट ही मेरा समीचीन गुरु है।

विकाशयन्ति भव्यस्य मनोमुकुलमंशवः।
रवेरिवारविन्दस्य कठोराश्च गुरूक्तयः।। (142)

कठोर भी गुरु के वचन भव्य जीव के मन को इस प्रकार से प्रफुल्लित (आनंदित) करते हैं जिस प्रकार कि सूर्य की कठोर (संतापजनक) भी किरणें कमल की कली को प्रफुल्लित किया करती हैं।

भगवती आराधना में शिवकोटि आचार्य ने दूसरों के लिए हितकर परन्तु कटु शब्द बोलने वाले को भी श्रेष्ठ कहा है। जो परोपकार न करके दूसरों की उपेक्षा करता है ऐसे श्रमण को हेय बताया है। यथा-

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणस्स सगणवासिस्स।
कडुगं व ओसहं तं महुरविवायं हवइ तस्स।। (359)

अपने गण के वासी साधु को हितकारी किन्तु हृदय को अनिष्ट भी लगने वाले

वचन बोलना चाहिए क्योंकि वे वचन कडुवी औषधि की तरह उसके लिए मधुर फलदायक होते हैं। दूसरे को अनिष्ट वचन बोलने से हमारा अपना क्या प्रयोजन है, क्या वह स्वयं नहीं जानता? ऐसा मान उसकी उपेक्षा नहीं करना चाहिए। परोपकार करना ही चाहिए। जैसे तीर्थंकर शिष्यजनों के संबोधन के लिए ही विहार करते हैं। महत्ता इसी में है कि परोपकार करने में तत्पर रहे।

क्षुद्राः संति सहस्त्रशः स्वभरणव्यापारमात्रोद्यताः।
स्वार्थो यस्य परार्थ एव स पुमानेकः सतामग्रणी।।
दुष्पूरोदरपूरणाय पिबति स्त्रोतः पतिं वाडवो।
जीमूतस्तु निदाघसंभृतजगत्संताप विच्छित्तये।। (359)

'अपने ही भरण-पोषण में लगे रहने वाले क्षुद्रजन तो हजारों हैं किन्तु परोपकार ही जिसका स्वार्थ है ऐसा पुरुष सज्जनों में अग्रणी विरल ही होता है। बड़वानल अपना कभी न भरने वाला पेट भरने के लिए समुद्र का जल पीता है किन्तु मेघ ग्रीष्म से संतप्त जगत् के संताप को दूर करने के लिए समुद्र का जल पीता है।'

पत्थं हिदयाणिट्ठं पि भण्णमाणं णरेण धेत्तव्वं।
पेल्लेदूण वि छूढं बालस्स घदं व तं खु हिदं।। (360)

हृदय को अनिष्ट भी वचन गुरु के द्वारा कहे जाने पर मनुष्य को पथ्य रूप से ग्रहण करना चाहिए। जैसे बच्चे को जबरदस्ती मुँह खोलकर पिलाया गया घी हितकारी होता है उसी तरह वह वचन भी हितकारी होता है।

अनगार धर्मामृत में भी उपरोक्त रहस्य का ही प्रतिपादन निम्न प्रकार से किया है-

विधिवद्धर्मसर्वस्वं यो बुद्धवा शक्तिश्चरन्।
प्रवक्ति कृपयाऽन्येषां श्रेयः श्रेयोऽर्थिनां हि सः।। (10)

जो विधिपूर्वक व्यवहार और निश्चय रत्नत्रयात्मक संपूर्ण धर्म को परमागम से और गुरु परंपरा से जानकर या रत्नत्रय से समाविष्ट आत्मा को स्वसंवेदन से जानकर शक्ति के अनुसार उसका पालन करते हुए लाभ, पूजा, ख्याति की अपेक्षा न करके कृपाभाव से दूसरों को उसका उपदेश करते हैं, अपने परम कल्याण के इच्छुक जनों को उन्हीं की सेवा करनी चाहिए, उन्हीं से धर्म श्रवण करना चाहिए।

स्व-हित करणीय

परोपकृतिमुत्सृज्य स्वोपकारपरो भव।
अपकुर्वन्परस्याज्ञोदृश्यमानस्य लोकवत्।। (32)

O Witless one! thou art serving this visible show that is not thyself; thou shouldst now renounce dowing good to others and take to dowing good to thine own self!

हे भव्य! अविद्या अर्थात् मोह के कारण जो तुमने देहादि पर द्रव्यों का उपकार किया हैं अभी विद्या के बल पर उस परोपकार को त्याग करके आत्मानुग्रह प्रधान बनो। शरीर आदि परद्रव्य हैं, क्योंकि शरीर पुद्गल से निर्मित हैं। जिस प्रकार कि लोक में अज्ञान अवस्था में लोग दूसरों के उपकार करते हैं, परन्तु ज्ञान होने के बाद दूसरों का उपकार त्याग करके स्व का उपकार करते हैं।

समीक्षा-इस श्लोक में आचार्यश्री ने लौकिक उदाहरण देकर यह समझाया कि जिस प्रकार लोक में बिना जाने शत्रु का भी उपकार कर लेते हैं परन्तु जब पता चल जाता है कि ये मेरा शत्रु है तब उसका उपकार छोड़कर आत्म-उपकार करते हैं, उसी प्रकार शरीर, धन-संपत्ति आदि जो परद्रव्य हैं, उसको मोही जीव अपना मानकर उसका संरक्षण संवर्द्धन करता है, परन्तु स्व-आत्म-द्रव्य को न जानता है, न मानता है, न उसका उपकार करता है। इसलिये दयालु परोपकारी आचार्य गुरुदेव भव्य को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे भव्य! तुम अनादिकाल से मोह से मोहित होकर स्व-उपकार को भूलकर दूसरों के उपकार में ही लगे हुए हो। तुम अभी तक धोबी का काम, गधे का काम, गुलामी का काम करते आ रहे हो। जिस प्रकार धोबी दूसरों के गंदे कपड़े धोता रहता है उसी प्रकार तुम भी दूसरों की गलती को देखकर उसको दूर करने में लगे हुए हो परन्तु स्वयं की गलती का भान तक तुम्हें नहीं है। जिस प्रकार गधा दूसरों का बोझ ढ़ोता है उसी प्रकार तुम भी शरीर का, कुटुम्ब का, धन का, अभिमान ढो रहे हो, गधा अपने पीठ पर चंदन की लकड़ी का भार केवल ढ़ोता रहता है परन्तु चंदन की सुगंधी तथा शीतलता का अनुभव नहीं करता है इसी प्रकार जीव, शरीर, संपत्ति, कुटुम्ब का भार ढ़ोता रहता है। परन्तु आत्मा का आनंद अनुभव नहीं करता है। वह उस भार को ही अपना सर्वस्व, गौरव, बड़प्पन मान लेता है। जो अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से धन कमाता है उस धन के कारण वह स्वयं को

बड़ा मान लेता है और दूसरे लोग भी उसको बड़ा मान लेते हैं। गुलाम जिस प्रकार मालिक के आधीन होकर उसके निर्देश के अनुसार दीन-हीन होकर मालिक की सेवा करता है उसी प्रकार मोही जीव शरीर, कुटुम्ब, धन, संपत्ति तथा राग-द्वेष के गुलाम बनकर उसकी नौकरी करता है और यह सब करता हुआ भी स्वयं को श्रेष्ठ मान लेता है। जो ज्ञान वैराग्य से सम्पन्न होकर परिवार तथा वैभवादि त्यागकर स्व-आत्म-कल्याण करना चाहता है, उसे भी ऐसे मोही जीव दीन-हीन असहाय गरीब मान लेते है। इसलिए आचार्यश्री ने यहाँ कहा कि हे मोही! तुमने अनंत संसार में दूसरों के लिए इतना रोया इतना आँसू बहाया कि यदि उस आँसू को इकट्ठा किया जाये तो अनेक समुद्र की जल राशि से अधिक हो जायेगा अनंत बार तुम दूसरों के गुलाम, भाई, पिता, पुत्र, स्त्री आदि बने और दूसरे भी तुम्हारे अनंत बार बने। इन सबके उपकार के लिए तुमने जितना परिश्रम किया उसका अनंतवाँ भाग भी स्वोपकार में लगाओगे तो तुम तीन लोक का स्वामी अर्थात् सिद्ध भगवान् बन जाओगे। इसलिए कुंदकुंदाचार्य देव ने कहा है-''आदहिदं कादव्वं'' अर्थात् आत्महित अच्छी तरह से समग्रता से करना चाहिए। कहा भी है-

पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं।

अण्णण्णाण महाजस सायरसलिलादु अहिययरं।।18।। (अ.पा.पृ. 265)

हे महाशय के धारक मुनि! तूने अनंत जन्मों में अन्य-अन्य माताओं के स्तन का इतना दूध पिया है जो समुद्र के जल से भी अत्यंत अधिक है-अनंतगुणित है।

तुह मरणे दुवरेणं अण्णाणं अणेय जणणीणं।

रूण्णाण णयणीरं सायरसलिलादु अहिययरं।।11।।

हे जीव! तेरा मरण होने पर दुःख से रोती हुई अन्य-अन्य अनेक माताओं का अश्रुजल समुद्र के जल से अत्यंत अधिक है।

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झियके सणहरणालट्ठी।

पुंजेइ जइ को वि जार हवदि य गिरिसमधिया रासी।।20।।

हे जीव! तूने अनंत संसार सागर में जिन केश, नख, नाभिनाल और हड्डियों को काटने के पश्चात् छोड़ा है यदि कोई यक्ष उन्हें इकट्ठा करे तो उनकी राशि पर्वत से भी अधिक हो जाये।

लाहहँ कित्तिहि कारणिण जे सिव-संगु चयंति।

खीला-लग्गिवि ते वि मुणि देउलु देउ डहंति।। (92)

जो कोई लाभ और कीर्ति के कारण परमात्मा के ध्यान को छोड़ देते हैं वे ही मुनि लोहे के कीले के लिए अर्थात् कीले के समान असार इन्द्रिय सुख के निमित्त मुनि पद योग्य शरीर रूपी देवस्थान को तथा आत्म देव को भव की आताप से भस्म कर देते हैं।

अप्पउ मण्णइ जो जि मुणि गरुयउ गंथहि तत्थु।
सो परमत्थे जिणु भणइ णवि बुज्झइ परमत्थु।। (93)

जो मुनि बाह्य परिग्रह से अपने को महंत (बड़ा) मानता है, अर्थात् परिग्रह से ही गौरव जानता है, निश्चय से वही पुरुष वास्तव में परमार्थ को नहीं जानता, ऐसा जिनेश्वर देव कहते हैं।

जोइय णेहु परिच्चयहि णेहु ण भल्लउ होइ।
णेहासत्तउ सयलु जगु दुक्खु संहतउ जोइ।। (115)

हे योगी! रागादि सहित वीतराग परमात्म पदार्थ के ध्यान में ठहरकर ज्ञान का वैरी स्नेह (प्रेम) को छोड़, क्योंकि स्नेह अच्छा नहीं है, स्नेह में लगे हुए समस्त संसारी जीव अनेक प्रकार शरीर और मन के दुःख सह रहे है, उनको तू देख। ये संसारी जीव स्नेह रहित शुद्धात्म तत्त्व की भावना से रहित है, इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोगते हैं। दुःख का मूल एक देहादिक का स्नेह ही है।

जैसे तिलों का समूह स्नेह (चिकनाई) के संबंध से जल से भीगना, पैरों से खुँदना, घानी में बार-बार पिलने का दुःख सहता है, उसे देखो।

मोक्खु जि साहिउ जिणवरहिं छंडिवि बहु-विहु रज्जु।
भिक्ख भरोडा जीव तुहँ करहि ण अप्पउ कज्जु।। (118)

जिनेश्वर देव ने अनेक प्रकार का राज्य का वैभव छोड़कर मोक्ष को ही साधन किया, परन्तु हे जीव! भिक्षा से भोजन करने वाला तू अपने आत्मा का कल्याण भी नहीं करता।

जिय अणु-मित्तु वि दुक्खड़ा सहण ण सक्कहि जोइ।
चउ-गइ-दुक्खहँ कारणइँ कम्मई कुणहि किं तोइ।। (120)

हे मूढ़जीव! तू परमाणु मात्र (थोड़े) भी दुःख सहने को समर्थ नहीं है, देख तो फिर चार गतियों के दुःख के कारण जो कर्म है उनको क्यों करता है।

(जैन धर्म के जिज्ञासु जन हेतु मार्गदर्शिका)

अलौकिक-अद्वितीय-अनुपम-अतिपावन
जैन धर्म के शब्दादि

(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन.....)

अलौकिक जैन धर्म है अति अलौकिक व अतिपावन।
शब्द से लेकर अर्थ व शिक्षा तक अद्वितीय व अनुपम।।

जैन धर्म में वर्णित है लोक-अलोक व आत्मा-परमात्मा।
अणु से लेकर महास्कंध तक मूर्तिक-अमूर्तिक शुद्ध-अशुद्ध।। (1)

संख्यात-असंख्यात-अनंत तक अनादि-अनंत-शाश्वतिक।
गुण-पर्ययमय द्रव्य के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वरूप तक।।

इसलिए केवल लौकिक भाषा व ज्ञान-विज्ञान से न होता ज्ञान।
यथा आकाश का मानव सामान्य बुद्धि से न कर पाता है ज्ञान।। (2)

यथा 'कर्म' शब्द सामान्यतः शरीर या भौतिक साधन से जो काम होता।
किन्तु जैन धर्मानुसार इससे परे भी 'द्रव्य-भाव-नोकर्म' होता।।

लौकिक में होता है 'कषायी' जो पशुओं का करता है वध।
जैन धर्मानुसार इसीसे परे क्रोधादि कषाय से युक्त जीव।। (3)

लौकिक में होते चारित्रहीन जो व्यवहार से पंच पापादि करते।
जैन धर्मानुसार इससे भी परे जो क्रोधादि कषायों से सहित होते।।

व्यवहार से मैथुन त्यागी को 'शीलवन्त' कहा जाता है।
निश्चय से 'आत्मस्वभाव स्थित' वालों को 'शीलवन्त' कहा जाता है।। (4)

लौकिक में शारीरिक आदि क्रियाशील को 'पुरुषार्थी' कहा जाता है।
आत्मा/(पुरुष) के श्रम करने वालों को 'पुरुषार्थी' धर्म में कहा जाता है।।

आत्मा के लिए उत्कृष्ट श्रम करने वालों को आगम में 'श्रमण' कहते है।
आत्मा ही है प्रयोजन जिनके उन्हें ही पुरुषार्थी/(श्रमण) कहते है।। (5)

केवल भोजन त्याग को ही 'उपवास' नहीं कहा आगम में।
इसी से परे भी कषाय (आदि) त्याग से आत्मा के समीप निवास में/(से)।।

अभ्यागत या मेहमानों को धर्म में नहीं कहा है 'अतिथि'।
तिथि बिन आगमनादि करने वाले साधुओं को कहा है 'अतिथि'।। (6)

तथाहि जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश व काल द्रव्य।
आस्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्ष-पुण्य-पाप तत्त्व/(पदार्थ)।।

अगुरुलघु जन्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य दृश्यमान उत्पाद आदि से भिन्न।
तथाहि अस्तित्व-वस्तुत्व-प्रमेयत्व सूक्ष्मत्व आदि द्रव्य के गुण।। (7)

द्रव्य हिंसा से भी अधिक पापमय है भावात्मक/(क्रोधादि भाव) हिंसा।
द्रव्य हिंसा से भी अधिक पापमय है परिग्रह पाप।।

दान से भी श्रेष्ठ है त्याग बाह्य तप से अंतरंग तप।
नैतिक सदाचार से भी श्रेष्ठ है आध्यात्मिक भाव।। (8)

'द्रव्य संग्रह' नहीं है केवल भौतिक धनादि का संग्रह मात्र।
द्रव्य संग्रह है जीवादि छहों द्रव्य के समूह रूप लोक-अलोक।।

धार्मिक रीति-रिवाज मात्र नहीं होता है निश्चय से धर्म।
'धर्म तो वस्तु स्वरूप है' शुद्धात्मा-स्वरूप ही निश्चय धर्म।। (9)

अतएव जैनागम समझना भी होता है अति कठिन।
आगमज्ञ गुरु से जैनागम समझना अतएव विधेय।।

सुदीर्घ गहन अध्ययन व अध्यापन से अनुभव मैंने किया।
आगम जिज्ञासुओं के हित हेतु 'कनक' ने यह वर्णन किया।। (10)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 13.02.2016, रात्रि 11.05

यह कविता ग.पु. कॉलोनी में प्रवचनसार के स्वाध्याय में आने वाले श्रोताओं व आनंदी बाई (भूतपूर्व शिक्षिका) के कारण बनी।

आध्यात्मिक दृष्टि से अज्ञानी

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., तुम दिल की.....)

सर्वज्ञ भाषित आचार्य लिखित, परमागम का यह कथन।
जो निज शुद्धात्मा को न जानते, वे ही निश्चय से अज्ञानी जन।।

ज्ञान तो आत्मा का निज स्वभाव, ज्ञान से जीव बनता ज्ञानी।

गुण-गुणी संबंध दोनों का, आत्म ज्ञान बिन न बने ज्ञानी।। (1)

जानने वाले ही (जब) नहीं जाने, तब कैसे बनेंगे ज्ञानी।
सूर्य बिना यथा सूर्य रश्मि न होती, आत्म ज्ञान बिन न बने ज्ञानी।।

निज शुद्धात्मा जब नहीं जानते, बाह्य ज्ञान से न मिलता मोक्ष।
मोक्ष बिन न मिले शाश्वत सुख, किन्तु मिले सांसारिक दुःख।। (2)

हित प्राप्ति अहित परिहार, जिससे होता वह है सुज्ञान।
मोक्ष है हित संसार/(दुःख) अहित, अतः मोक्षप्रद है सुज्ञान।।

अतएव आत्मज्ञानी को ही, आध्यात्मिक मानता है ज्ञानी।
आत्मज्ञान बिन आगमज्ञान से भी, जीव रहते हैं अज्ञानी।। (3)

आत्मज्ञान बिन अन्य सभी ज्ञान, आध्यात्मिक दृष्टि से है कुज्ञान।
आत्मा के बिना यथा शरीर, जीव न होता है शव।।

आत्म ज्ञान बिन तप-त्याग व संयम, आदि से भी न मिलता मोक्ष।
ईकाई बिन यथा अनेक शून्य से भी, नहीं बनता है गणित।। (4)

आत्मज्ञान ही है परम विद्या, ''सा विद्या या विमुक्तये'' कहा।
आत्मज्ञान ही है वीतराग विज्ञान, इसी से ही मोक्ष प्राप्ति कहा।।

स्वयं को मानना/(जानना) आत्म स्वरूप, जो होता है चैतन्मय।
अनंतज्ञान दर्शन सुख वीर्यमय, अमूर्तिक व अव्यय।। (5)

तन-मन-इन्द्रिय सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री न होते आत्मा।
ये सभी कर्मजनित अवस्था इसी से परे निज शुद्धात्मा।।

ऐसा जानना व मानना ही आध्यात्मिक दृष्टि से होता ज्ञान।
इसके लिए ही 'कनकनन्दी' करता सदा ध्यान अध्ययन।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 09.02.2016, रात्रि 2.24

संदर्भ-

परमट्ठम्मि य अठिदो कुणदि तवं वदं च धारयदि।
तं सव्वं बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू।। (155) समयसार

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता।
परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणि।। (160) समयसार

जो कोई ज्ञानस्वरूप आत्मा में स्थित नहीं हो रहा है और तप करता है तथा व्रतों को धारण करता है तो उसके व्रत और तप को सर्वज्ञ देव अज्ञान तप और अज्ञान व्रत कहते है। (155)

यद्यपि जो व्रत और नियमों को धारण करते हैं, शील पालते हैं तथा तप भी करते हैं परन्तु परमात्मा स्वरूप के ज्ञान से रहित हैं इसलिये वे सब अज्ञानी हैं। (160)

जैन धर्म की कुछ अति अद्वितीय विशेषताएँ

(चाल : आत्मशक्ति....., भातुकली....., शत-शत वंदन.....)

जैन धर्म की कुछ विशेषताओं का मैं कर रहा हूँ यहाँ वर्णन।
आगम में हुआ विस्तृत वर्णन, मेरे साहित्य में भी किया हूँ वर्णन।। (ध्रुव)

अनेकांत है परम विशेषता युक्त जो अनंत गुण-पर्याओं से युक्त।
हर द्रव्य में होते अनंत गुण ऐसा वर्णन अनेकांत/(सिद्धांत) करता।

अनेकांत को कहने वाला स्याद्वाद जो अनंत सप्तभंग सहित।
अस्ति-नास्ति-अव्यक्तव्य आदि सापेक्ष परक कथन सहित।। (1)

वस्तु-व्यवस्था भी विशेषता युक्त जो अनादि अनिधन व मौलिक।
जीव-पुद्गल-धर्म-अधर्म-आकाश काल-छहों/(हर) द्रव्य अनंतगुण-पर्याय युक्त।।

छहों द्रव्य ही स्वयंभू सनातन सत्य अकृत्रिम अविनाशी पृथक्-पृथक्।
परस्पर सहयोगी, एक क्षेत्र अवगाही तो भी एक-दूसरों से है पूर्ण पृथक्।। (2)

कर्म सिद्धांत भी विशेषताओं से युक्त द्रव्य-भाव-नोकर्म रूप में।
द्रव्यकर्म है पुद्गल परमाणु स्वरूप भावकर्म राग द्वेष मोह रूप।।

नोकर्म होते है पंचविध शरीर स्वरूप भावकर्म से बनते/(बंधते) है द्रव्यकर्म।
तीनों कर्म भी परस्पर प्रभावित होते किन्तु 'भावकर्म' सबसे प्रभावी होते।। (3)

गुणस्थान का स्वरूप भी विशेषता युक्त आध्यात्मिक क्रम विकास से सहित।
आध्यात्मिक विकास के कारण ही जीव अंत में बनता परमात्मा स्वरूप।।

परमात्मा बनने की इस प्रक्रिया से भव्यात्मा ही बनते परमात्मा स्वरूप।
अभी तक बने हैं अनंत परमात्मा और भी बनेंगे अनंत परमात्मा रूप।। (4)

इसलिए हर जीव स्वयं का कर्त्ता-धर्त्ता भव्य जीव स्वयं का भी उद्धारकर्त्ता।
तीनों कर्म रहित जीव बने परमात्मा कर्म सहित जीव ही संसारी आत्मा।।

धर्म तो वस्तु स्वभावमय होता अतः छहों द्रव्य भी होते धर्ममय।
जीवों का भी शुद्ध स्वभाव ही स्व-धर्म परमात्म स्वरूप ही जीवों का स्वधर्म।। (5)

अलौकिक गणित भी विशेषता युक्त संख्यात-असंख्यात-अनंत युक्त।
उपरोक्त हर विशेषताओं के मापक लौकिक गणित परे अलौकिक गणित।।

अतएव जैन धर्म होता विश्व व्यापक अकृत्रिम अनादि अनिधन शाश्वत।
सीमा व बंधनों से रहित आत्मिक 'कनकनन्दी' का शुद्धात्मा स्वरूप।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 17.02.2016, रात्रि 8.22

स्वयं (आत्मा-अहं-मैं) के वर्णन आदि धर्म है न कि अधर्म (घमण्ड)

(आत्मा से अतिरिक्त अन्य को मैं या मेरा मानना है अधर्म)

(चाल : आत्मशक्ति....., शत-शत वंदन.....)

स्वयं को जानना व मानना तथाहि कहना है कि 'मैं हूँ आत्मा'।
स्वयं की उपलब्धि हेतु ध्यान-अध्ययन करता सो अंतरात्मा/(सोऽहं भाव)।।

अंतरात्मा ही परमात्मा बनने हेतु करता है जिज्ञासा व तत्त्वचर्चा।
मनन-चिंतन लेखन आदि प्रवचन व आत्मानुभव की चर्चा।। (1)

यथा माघनंदी आचार्य स्व शुद्धात्मा का वर्णन किया ध्यान-सूत्र में।
स्वयं को शुद्ध-बुद्ध-आनंद रूप में वर्णन किया पूर्ण ग्रंथ में।।

'ज्ञानार्णव' में भी शुभचंद्राचार्य ने स्व-शुद्धात्मा का वर्णन किया।
धर्मध्यान से लेकर शुक्लध्यान तक में आत्मध्यान का वर्णन किया।। (2)

ध्यान जब उत्कृष्ट से उत्कृष्ट होता बाह्य आलंबन भी छूटता जाता।
पदस्थ-पिंडस्थ-रूपस्थ-रूपातीत में स्व को ही अधिक से अधिक ध्याता।।

इसी से जो स्व-का अनुभव होता उसका वर्णन भी करते आचार्य।
'दाएहं अप्पणो सविहवेण' रूप से वर्णन किया (श्री) कुंदकुंद आचार्य।। (3)

ऐ सब नहीं है 'अहंकार' यह सब 'शुभ भाव' या धर्मध्यान/(सोऽहं भाव)।
इसी से अहंकार होता दूर व धीरे-धीरे बढ़ता है आत्मध्यान/(शुक्लध्यान)।।

'अहंकार' से परे होता सोऽहं भाव जिससे परे होता 'अहं' भाव।
'अहं' है शुद्ध आत्म स्वभाव यहाँ न होता 'अहंकार' व 'सोऽहं भाव'।। (4)

'अहमेक्क खलु सुद्ध' स्वरूप ही होता है स्व-शुद्धात्मा का निज स्वभाव।
'अहंकार' (मद) तो मिथ्यात्व भाव है सोऽहं/(मैं आत्मा) होता है शुभ भाव।।

शरीर-इन्द्रिय-मन को स्वरूप (मैं) मानना है मिथ्या भाव।
यही यथार्थ से 'अहंकार' है जो है जीव का विभाव-भाव।। (5)

सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि-डिग्री आदि को मेरा मानना है ममत्व (मिथ्या) भाव।
स्व-शुद्धात्मा गुणों को मेरा मानना है सम्यक्त्व या 'शुभ भाव'।।

कर्मजनित भाव व उपलब्धियाँ नहीं होते हैं शुद्धात्मा स्वभाव।
इसलिए इसे 'मैं' या 'मेरा' मानना होता है मिथ्यात्व भाव।।

कर्म से परे आत्म स्वभाव को 'मैं' या 'मेरा' मानना है सुधर्म।
इसलिए ही 'कनकनन्दी' आत्म स्वभावमय 'मैं' को माने स्वधर्म।। (7)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 15.02.2016, रात्रि 11.30

संदर्भ-

मुमुक्षु का कर्त्तव्य

अविद्याभिदुरं ज्योति, परं ज्ञानमयं महत्।
तत्प्रष्टव्यं तदेष्टव्यं, तद् द्रष्टव्यं मुमुक्षुभिः।। (49)

That excellent and supreme light of the self is the destrayer of ignorance, the seekers after saluation should always angage themselves in questioning others about it, in ectionately deeking it and in realizing if by actual exprionce!

पूर्वोक्त विषय को आचार्यश्री और भी बताते है-मुमुक्षु को सतत उस आनंद स्वरूप, ज्ञानमय, आत्म प्रकाशक अविद्या रूपी अंधकार को भेदन करने वाली परम्

चितज्योति, विघ्नों को छेदन करने वाला महान् विपुल, इन्द्रादि से पूज्यनीय चैतन्य प्रकाश के बारे में गुरु आदि से सतत् पूछना चाहिए तथा उसकी इच्छा करनी चाहिए एवं उसका ही अनुभव करना चाहिए। आचार्य गुरुदेव ने शिष्य के प्रति परम करुणा से प्लावित होकर शिष्य को आत्म तत्त्व के बारे में विशेष ज्ञान कराने के लिए व उसमें स्थिर करने के लिए आत्म तत्त्व का सविस्तार यहाँ वर्णन किया है।

समीक्षा–संसारी जीव अनादि अनंत काल से स्व-आत्म स्वरूप को भूलकर उससे दूर होकर, उससे च्युत होकर पर द्रव्य में ही रचा है, पचा है, अनुभव किया है और अपनाया है। अतएव ऐसे चिर-विस्मरणीय उपेक्षित स्व-आत्म द्रव्य और आत्म स्वरूप का ज्ञान, श्रद्धान, आचरण और उसकी उपलब्धि बहुत ही दुरूह है, क्लिष्ट साध्य है। कुंदकुंद देव ने कहा भी है-

सुदपरिचिदाणुभूदा सव्वस्स वि कामभोगबंधकहा।
एयत्तस्सुवलंभो णवरि ण सुलभो विहत्तस्स।।4।। समयसार पृष्ठ-4

सुद अनंत बार सुनी गई है **परिचिदा** अनंत बार परिचय में आई है **अणु भूदा** अनंत बार अनुभव में भी आई है। **सव्वस्स वि** सब ही संसारी जीवों के **काम भोग** बंध कहा काम शब्द से स्पर्शन और रसना, इन्द्रिय के विषय और भोग शब्द से घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिय के विषय लिए गए हैं उनके बंध या संबंध की कथा अथवा बंध शब्द के द्वारा प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश बंध एवं उसका फल नर-नारकादि रूप लिया जा सकता है, इस प्रकार काम, भोग और बंध की कथा जो पूर्वोक्त प्रकार से श्रुत-परिचित और अनुभूत है इसलिए दुर्लभ नहीं किन्तु सुलभ है। **एयत्तस्स** परन्तु एकत्व का अर्थात् सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र के साथ एकता को लिए हुए परिणमन रूप जो निर्विकल्प समाधि उसके बल से अपने आपके अनुभव में आने योग्य शुद्धात्मा का स्वरूप है उस एकत्व का **अवलंभों** उपलंभ संप्राप्ति अर्थात् अपने उपयोग में ले आना **णवरि** वह केवल **ण सुलभो** सुलभ नहीं है **विहतस्स** कैसे एकत्व का? रागादि से रहित एकत्व का। क्योंकि वह न तो कभी सुना गया न कभी परिचय में आया और न अनुभव में ही लाया गया।

उपर्युक्त कारण से आचार्यश्री ने कहा कि-हे मोक्ष सुख के इच्छुक भव्य! तुम सतत मोक्ष स्वरूप स्व-आत्म तत्त्व का चिंतन, मनन, श्रवण, निनिध्यासन, ध्यान करो। ग्रंथकार ने समाधितंत्र में व्यक्त करते हुए कहा है-

तद् ब्रूयात्तत्परान्पृच्छेत् तदिच्छेत्तत्परो भवेत्।
येनाविद्यामयं रूपं त्यक्त्वा विद्यामयं व्रजेत्।।

योगी को चाहिए कि वह उस समय तक आत्म ज्योति का स्वरूप कहे, उसी के संबंध में पूछे, उसी की इच्छा करे और उसी में लीन होवे जब तक अविद्या (अज्ञान) जन्य स्वभाव दूर होकर विद्यामय न हो जावे।

अष्टावक्र गीता में भी प्रकरान्तर से इस विषय का प्रतिपादन मुनि अष्टावक्र ने निम्न प्रकार से किया है-

एको विशुद्धबोधोऽहमिति निश्चयवह्निना।
प्रज्वाल्याज्ञानगहन वीतशोकः सुखीभव।।9।।

फिर शिष्य प्रश्न करता है कि, आत्मज्ञानरूपी अमृतपान किस प्रकार करूँ? तब गुरु समाधान करते हैं कि हे शिष्य! मैं एक हूँ अर्थात् मेरे विषे सजाति-विजाति का भेद नहीं और स्वगत भेद भी नहीं है, केवल एक विशुद्ध बोध और स्व-प्रकाश रूप हूँ, निश्चय रूपी अग्नि से अज्ञान रूपी वन को भस्म करके शोक, मोह, राग, द्वेष, प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु इनके नाश होने पर शोक रहित होकर परमानंद को प्राप्त हो।

परम सामायिक चारित्र की व्यापकता व महत्ता

साधुओं के 28 मूलगुण सतत एक साथ पालन नहीं होते : किन्तु समता में 28 मूलगुण व 34 उत्तर गुण गर्भित होते (परम समतामय आत्मा ही मूलगुण/समता ही परम धर्म)

(चाल : कहाँ गये चक्री जिन जीता.....(मंगतराय).....)

अट्ठावीस मूलगुण श्रमण के होते हैं...
किन्तु सतत एक साथ पालन न होते हैं...
सामायिक चारित्र में वे सब गर्भित होते हैं...
सामायिक चारित्र हेतु ये गुण सहयोगी होते हैं...
आत्मा ही होता है सभी गुणों का मूल...
आत्मा की प्राप्ति हेतु परम सामायिक मूल...
इसमें स्थिर न होने पर पालते छेदोपस्थापना...
अट्ठावीस मूलगुण रूप में (होती) छेदोपस्थापना...(1)...

बाहुबली मुनि न पाले थे अट्ठावीस मूलगुण...
मुनि भरत भी न पाले थे अट्ठावीस मूलगुण...
सामायिक चारित्र में/(से) बने थे केवली सिद्ध...
अभेद से अट्ठावीस मूलगुण इसी से सिद्ध...
कायोत्सर्ग में बाहुबली एक वर्ष तपस्यारत...
भरत मुनि को अंतर्मुहूर्त में कैवल्य प्राप्त...
बाह्य में पाँचों समितियाँ भी पालन नहीं हुई...
स्तुति-वंदना क्रिया रूप में पालन नहीं हुई...(2)...
सामान्य मुनि/(श्रमण) के सभी मूलगुण सतत न पलते...
सतत केशलोंच आहार-विहार भी नहीं करते...
प्रतिष्ठापन/(शौच) में भाषा समिति नहीं पालते...
निद्रा अवस्था में क्रियात्मक मूलगुण न पालते...
जिनकल्पी व ऋद्धिधारी मुनि जो होते...
वे भी अट्ठावीस मूलगुण नहीं पालते...
तीर्थंकर मुनि पिच्छी कमण्डल अतः न धरते...
चारणऋद्धिधारी चातुर्मास में संचरते...(3)...
इससे उन्हें कोई भी दोष नहीं लगते...
मल विसर्जन व जीवघात उनसे नहीं होते...
परम सामायिक में मूलगुण व उत्तरगुण...
गर्भित होते यथा सिद्ध में अनंत गुण-गण...
मूलगुण व उत्तरगुण समता से रहित...
संवर-निर्जरा व मोक्ष में नहीं समर्थ...
भव्यसेन व द्वीपायन मुनि के समान...
मोक्ष न पाते वे मुनि जो सामायिक विहीन...(4)...
सामायिक सहित जो होता है सच्चा श्रावक...
वस्त्र सहित श्रमण सम होता आगम में उक्त...
समता में अतएव जो मुनिवर सतत हैं रहते...
बाह्य तप-त्यागी से भी वे महान् है होते...

(28) मूलगुण व (34) उत्तरगुण दशविध धर्म...

सोलह कारण भावना व रत्नत्रय धर्म...

आचार्य व उपाध्याय के समस्त गुण नियम...

परम सामायिक में सभी हो जाते हैं लीन...(5)...

राग द्वेष मोह काम क्रोध से सहित जो होते...

ख्याति पूजा लाभ प्रसिद्धि में आसक्त होते...

निन्दा चुगली लंद-फंद द्वंद्व संक्लेश युक्त...

वे अट्ठावीस मूलगुण सह भी न समता युक्त...

आगम-आध्यात्मिक व चरणानुयोग रहस्य...

परम सामायिक रूपी आत्मोपलब्धि ही मुख्य...

अभेद रत्नत्रय व परम शुक्लध्यान स्वरूप...

परम सामायिक ही 'कनक' का शुद्ध स्वरूप...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 19.02.2016, रात्रि 8.35

संदर्भ-

आत्म-परिणाम-हिंसन हेतुत्वात्सर्वमेव हिंसैतत्।

अनृतवचनादि-केवलमुदाहृतं शिष्य बोधाय।। (42) पु.उ.

आत्मा के परिणामों की हिंसा होने के कारण से यह सब ही हिंसा है, असत्य वचनादि केवल शिष्यों को बोध करने के लिए कहे गये हैं।

बावीसं तित्थयरा सामायियसंजमं उवदिसति।

छेदुवठा वणियं पुण भयवं उसहो व वीरो य।। (535)

बाईस तीर्थंकर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं किन्तु भगवान् वृषभदेव और महावीर छेदोपस्थापना संयम का उपदेश देते हैं।

आदीय दुव्विसोधण णिहणे तह सुट्ठु दुरणुपाले य।

पुरिमा य पच्छिमा वि हु कप्पाकप्प ण जाणंति।। (537)

आदिनाथ के तीर्थ में शिष्य कठिणता से शुद्ध होने से तथा अंतिम तीर्थंकर के तीर्थ में दुःख से उनका पालन होने से वे पूर्व के शिष्य और अंतिम तीर्थंकर के शिष्य योग्य व अयोग्य को नहीं जानते हैं।

श्रमण के 28 मूलगुण तथा च्छेदोपस्थापन चारित्र

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च।। (208)
एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि।। (209) (प्र.सार)

(Five) vows, (fivefold) carefulness, control of (five) senses, pulling out the hair, (sixfold) AVASYAKAS (or essentials), nakedness, not taking bath, sleeping on ground, not cleansing the teeth, taking only one meal a day-tehse, in fact, have been prescribed, as the primary virtues of the ascetic, by the great Jinas; he, who is negligent about them, is a defaulter (who needs to be reestablished on the correct path).

आगे कहते हैं कि जब अभेदरूप सामायिक संयम में ठहरने को असमर्थ होकर साधु उससे गिरता है तब भेदरूप छेदापस्थापन चारित्र में जाता है-

(वदसमिदिंदियरोधो) पाँच महाव्रत, पांच समिति, पाँच इन्द्रियों का निरोध (लोचावस्सं) केशलोंच, छः आवश्यक कर्म (अचेलमण्हाणं) नग्नपना, स्नान न करना, (खिदिसयणमदंतवणं) पृथ्वी पर सोना, दन्तवन न करना (ठिदिभोयणमेयभत्तं) खड़े हो भोजन करना, और एक बार भोजन करना, (एदे) ये (समणाणं मूलगुणा) साधुओं के अट्ठाईस मूलगुण (खलु) वास्तव में (जिणवरहिं पण्णत्ता) जिनेन्द्रों ने कहे हैं। (तेसु पमत्तो) इन मूलगुणों में प्रमाद करने वाला (समणा) साधु (छेदोवट्ठावगो) छेदोपस्थापक (होदि) होता है।

निश्चयनय से मूल नाम आत्मा का है उस आत्मा के केवल ज्ञानादि अनंत गुण मूलगुण हैं। ये सब मूलगुण उस समय प्रगट होते हैं जब भेद-रहित समाधिरूप परम सामायिक निश्चय एक व्रत के द्वारा (जो मोक्ष का बीज है) मोक्ष प्राप्त हो जाता है। इसी कारण से वही सामायिक आत्मा के केवलज्ञानादि मूलगुणों को प्रगट करने के कारण होने से निश्चय मूलगुण है। जब यह जीव अभेद रूप समाधि में सामायिक चारित्र में ठहरने को समर्थ नहीं होता है तब भेद रूप चरित्र को ग्रहण करता है, चारित्र का सर्वथा त्याग नहीं करता, जैसे कोई भी सुवर्ण का चाहने वाला पुरुष सुवर्ण को न पाता हुआ उसकी कुंडल आदि अवस्था विशेषों को ही ग्रहण कर

लेता है, सर्वथा सुवर्ण का त्याग नहीं करता हैं तैसे यह जीव भी निश्चय मूलगुण नाम की परम समाधि अर्थात् अभेद सामायिक चारित्र का लाभ न होने पर छेदोपस्थापना नाम अर्थात् भेदरूप चारित्र को ग्रहण करता है छेद होने पर फिर स्थापन करना छेदोपस्थापना है। अथवा छेद से अर्थात् व्रतों के भेद से चारित्र को स्थापन करना सो छेदोस्थापना है। वह छेदोपस्थापना संक्षेप में पाँच महाव्रत रूप है उन्हीं व्रतों की रक्षा के लिए पाँच समिति आदि के भेद से उसके अट्ठाईस मूलगुण भेद होते हैं। उन ही मूलगुणों की रक्षा के लिए 22 परिषहों का जीतना व 12 प्रकार तपश्चरण करना ऐसे चौतीस उत्तरगुण होते हैं। इन उत्तर गुणों के लिए देव, मनुष्य, तिर्यंच व अचेतन कृत चार प्रकार उपसर्ग का जीतना व बारह भावनाओं का भावना आदि कार्य किये जाते हैं।

सर्व सावद्य योग के प्रत्याख्यान स्वरूप एक महाव्रत है उसके विशेष अथवा भेद हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह की विरतिस्वरूप पाँच महाव्रत तथा उसी का परिकरभूत पाँच प्रकार की समिति, पाँच प्रकार का इन्द्रियरोध, लोच, छह प्रकार के आवश्यक, अचेलकत्व (नग्नता), अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन (दातुन न करना), खड़े-खड़े भोजन और एक बार आहार लेना, इस प्रकार यह (अट्ठाईस) **एक अभेद सामायिक संयम के विकल्प (भेद) होने से श्रमणों के मूलगुण ही हैं।** जब श्रमण एक सामायिक संयम में आरूढ़ता के कारण जिसमें भेदरूप आचरण सेवन नहीं है, ऐसी दशा से च्युत होता है तब केवल सुवर्ण मात्र के अर्थी को कुंडल, कंकण, अँगूठी आदि को ग्रहण करना (भी) श्रेय है, किन्तु ऐसा नहीं है कि (कुंडल इत्यादि का ग्रहण कभी न करके) सर्वथा स्वर्ण की ही प्राप्ति करना ही श्रेय है, ऐसा विचार करके वह मूलगुणों में भेदरूप से अपने को स्थापित करता हुआ अर्थात् मूलगुणों में भेदरूप से आचरण करता हुआ छेदोपस्थापक होता है।

समीक्षा-समस्त वैभाविक भावों को त्याग करके परम समरसी भाव में स्थित होना सामायिक रूपी महाव्रत है। इसे ही प्राप्त करना प्रत्येक का लक्ष्य तथा परम कर्त्तव्य भी है। इसे ही श्रामण्य, समता, महाव्रत, सामायिक, चारित्र, सामायिक संयम, सामायिक शुद्धिसंयम आदि नाम से अभिहित किया जाता है। इसमें रत्नत्रय, चारों आराधना, (दर्शनाराधना, ज्ञानाराधना, चारित्राराधना, तपाराधना) पंचाचार (ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार) उत्तम क्षमादि दश धर्म, 28 मूलगुण आदि

सब गर्भित हैं। वीरसेन स्वामी ने धवला में कहा भी है-अत्राप्यभेदापेक्षया पर्यायस्य पर्यायित्यपदेशः। सम् सम्यक् सम्यक्दर्शनज्ञानानुसारेण यताः बहिरंगान्तरंगास्त्रवेभ्यो विरताः संयताः।

यहाँ पर भी अभेद की अपेक्षा से पर्याय का पर्यायी रूप से कथन किया है। 'सम्' उपसर्ग सम्यक् अर्थ का वाची है, इसलिये सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान पूर्वक 'यताः' अर्थात् जो बहिरंग और अंतरंग आस्रवों से विरत हैं उन्हें संयत कहते हैं। ''**सर्वसावद्यायोगात् विरतोऽस्मीति सकलसावद्ययोग विरतिः**'' सामायिक शुद्धि संयमों द्रव्यार्थिकत्वात्।

मैं सर्वप्रकार के सावद्ययोग से विरत हूँ इस प्रकार द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा सकल सावद्ययोग के त्याग को सामायिक शुद्धि संयम कहते हैं।

सामायिक के स्वरूप को हृदयंगम करना और उसे पालन करना सबके लिए सर्वथा संभव नहीं है, क्योंकि अनादिकालीन संस्कार के कारण सामायिक में दृढ़ता रूप शक्ति, भावना नहीं हो पाती है। पूर्व संस्कार के कारण अर्थात् पूर्व संचित द्रव्य कर्म के तीव्र उदय से जीव जानता हुआ, मानता हुआ और करने की भावना भाता हुआ भी स्व-स्वरूप में/समता में स्थिर नहीं हो पाता है। पूज्यपाद स्वामी ने कहा भी है-

जानन्नप्यात्मनस्तत्वं विविक्तं भावयन्नपि।
पूर्वविभ्रमसंस्काराद् भ्रांति भूयोऽपि गच्छति।।

यद्यपि अंतर आत्मा अपने आत्मा के यथार्थ स्वरूप को जानता है और उसे शरीरादिक पर द्रव्यों से भिन्न अनुभव भी करता है। फिर बहिरात्मावस्था के चिरकालीन संस्कारों के जाग्रत हो उठने के कारण कभी-कभी बाह्य पदार्थों में उसे एकत्व का भ्रम हो जाता है। इसी से अंतर आत्मा सम्यक् दृष्टि के ज्ञान चेतना के साथ कदाचित् कर्म-चेतना व कर्म-फल चेतना का भी सद्भाव माना गया है।

जब मुनि समता में पूर्ण रूप स्थिर नहीं हो पाता है और उसमें चंचलता आ जाती है तब अव्रत में, अशुभ में, असंयम में प्रवृत्त नहीं हो इस उद्देश्य से 28 मूलगुणों का पालन करता हुआ छेदोपस्थापन चारित्र को धारण करता है। स्व-स्वरूप से, समता से च्युत हो जाना, विचलित हो जाना 'छेद' है। पुनः प्रयत्नपूर्वक स्व-स्वरूप को प्राप्त करने का पुरुषार्थ ही 'उपस्थापना' है। अजितनाथ तीर्थंकर से लेकर

पार्श्वनाथ तीर्थंकर पर्यंत 22 तीर्थंकर के शिष्य सरल एवं प्राज्ञ होने के कारण केवल उनके लिए सामायिक चारित्र का विधान था परन्तु ऋषभदेव के शिष्य सरल एवं जड़ होने के कारण तथा भगवान् महावीर के शिष्य कुटिल एवं जड़ होने के कारण इनके लिए छेदोपस्थापन संयम का विधान है। मूलाचार में कहा भी है-

बावीसं तित्थयरा सामायियसंजमं उवदिसति।
छेदुवठावणियं पुण भयवं उसहो य वीरो य।। (535) पृ. 405

बाईस तीर्थंकर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं किन्तु भगवान् वृषभदेव और महावीर छेदोपस्थापना संयम का उपदेश देते हैं।

अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ पर्यंत 22 तीर्थंकर सामायिक संयम का उपदेश देते हैं। किन्तु छेदोपस्थापना संयम का वर्णन वृषभदेव और वर्धमान स्वामी ने किया है।

आचक्खिदुं विभजिदुं विण्णादुं चावि सुहदरं होदि।
एदेण कारणेण दु महव्वदा पंच पण्णत्ता।। (536)

जिस हेतु से कहने, विभाग करने और जानने के लिए सरल होता है उस हेतु से महाव्रत पाँच कहे गये हैं। कहने के लिए अथवा अनुभव करने के लिए तथा पृथक्-पृथक् भावित करने के लिए और समझने के लिए भी सुख से अर्थात् सरलता से ग्रहण हो जाता है। अर्थात् जिस हेतु से अन्य शिष्यों को प्रतिपादन करने के लिए, अपनी इच्छानुसार उनका अनुष्ठान करने के लिए, विभाग करके समझने के लिए भी सामायिक संयम सरल हो जाता है इसलिये महाव्रत पाँच कहे गये हैं।

आदीय दुव्विसोधण णिहणे तह सुट्ठु दुरणुपाले य।
पुरिमा य पच्छिमा वि हु कप्पाकप्पं ण जाणंति।। (537)

आदिनाथ के तीर्थ में शिष्य कठिनता से शुद्ध होने से तथा अंतिम तीर्थंकर के तीर्थ में दुःख से उनका पालन होने से पूर्व के शिष्य और अंतिम तीर्थंकर के शिष्य योग्य और अयोग्य को नहीं जानते हैं।

आदिनाथ के तीर्थ में शिष्य दुःख से शुद्ध किये जाते थे, क्योंकि वे अत्यंत सरल स्वभावी होते थे तथा अंतिम तीर्थंकर के तीर्थ में शिष्यों का दुःख से प्रतिपालन किया जाता है क्योंकि वे अत्यंत वक्र स्वभावी होते हैं। ये पूर्वकाल के शिष्य और पश्चिम काल के शिष्य दोनों समय के शिष्य भी स्पष्टतया योग्य अर्थात् उचित और

अयोग्य अर्थात् अनुचित नहीं जानते हैं इसलिये आदि और अंत के दोनों तीर्थंकरों ने छेदोपस्थापना संयम का उपदेश दिया है।

ये छेदोपस्थापना संयम भी प्राथमिक/साधक मुनियों के लिए धारणीय है, उपादेय है एवं मोक्ष के लिए कारण भी है। धवला में कहा भी है-

छेत्तूण य परियायं पोरणं जा ठवेइ अप्पाणं।

पंचजमे धम्मे सो छेदोवट्ठावओ जीवो।। (188) (धवला पृ. 372)

जो पुरानी सावद्यव्यापाररूपपर्याय को छेदकर पाँच यमरूप धर्म में अपने को स्थापित करता है वह जीव छेदोपस्थापक संयमी कहलाता है।

महाव्रत की परिभाषा करते हुए आचार्य अमृतचंद्र ने कहा है कि ''सर्वसावद्ययोग के प्रत्याख्यान रूप एक महाव्रत है।'' कुंदकुंददेव ने भी इसकी परिभाषा में कहा है कि-

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं।

जं च महल्लाणि तदो महल्ला इत्तहे ताइं।। (30) पृ. 92

अहिंसा आदि को महाव्रत क्यों कहते हैं? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए कुंदकुंद स्वामी ने तीन हेतु दिये हैं। प्रथम हेतु में उन्होंने कहा है कि चूँकि महापुरुष अर्थात् गुरुओं के भी गुरु श्रेष्ठजन इनका साधन करते हैं इसलिये इन्हें महाव्रत कहते हैं। दूसरे हेतु में उन्होंने कहा है कि चूँकि पूर्ववर्ती बड़े-बड़े आचार्यों ने, भगवान् वृषभदेव को आदि लेकर महावीर पर्यंत तीर्थंकरों ने, वृषभसेन को आदि लेकर गौतमान्त गणधरों ने तथा जम्बूस्वामी पर्यंत सामान्य केवलियों ने इनका आचरण किया है, इनका आदर किया है इसलिये इन्हें महाव्रत कहते हैं और तीसरे हेतु में कहा है कि वे स्वयं महान् हैं-अत्यंत श्रेष्ठ हैं इसलिए महाव्रत कहे जाते हैं।

हिंसादिउ परिहारु करि जो अप्पा हु ठवेइ।

सो बियऊ चारित्तु मुणि जो पंचम-गइ णेइ।। (101) (योगासार पृ. 382)

हिंसा आदि का त्याग कर जो आत्मा को स्थिर करता है, उसे दूसरा चारित्र (छेदोपस्थापन) समझो-यह पंचम गति को ले जाने वाला है।

इस महाव्रत के ही अहिंसादि पंच महाव्रत है तथा उसी का ही साधक स्वरूप पाँच समिति, पाँच इन्द्रिय निरोध, षट् आवश्यक, केशलोंच, नग्नत्व, अस्नान, भूमिशयन, अदंतधोवन, स्थिति भोजन और एक बार भोजन है।

अपुनरागमन पथ : मोक्ष

दर्शनमात्म विनिश्चितिरात्मपरिज्ञान, मिश्यते बोधः।

स्थितिरात्मनि चरित्रं निश्चय-रत्नत्रयं वन्दे।।

अनादि आवहमान काल से संसार के मध्य में चतुर्गति रूपी पथ के पथिक अनंतों बार गमनागमन करते हुए भी अपना लक्ष्य गंतव्य स्थल को एक बार भी प्राप्त नहीं कर सके कारण उनका गमन पुनरागमन में परिवर्तित हो जाता है। ठीक ही है- कौन बुद्धिमान पथिक अपने गंतव्य स्थल को प्राप्त किये बिना ही उसका गमन स्थगित कर देता है। वह पथिक अनादि अनंत काल से अविश्रांत गमन करते हुए भी अपने लक्ष्य स्थल में नहीं पहुँचने का कारण क्या है?

इसका सिर्फ एक ही उत्तर 'विपरीत गमन।' यदि किसी पथिक का लक्ष्य एक सरल रेखा के पूर्व में पहुँचने का है, किन्तु वह उस सरल रेखा के पश्चिम दिशा में गमन कर रहा है, तो वह अनंत भविष्यत काल पर्यंत कितना ही क्षिप्र गति से गमन करे तो भी वह उस सरल रेखा को पूर्व दिशा में नहीं पहुँच सकता। यदि वह सम्यक् मार्ग में गमन करना प्रारंभ कर देगा तब वह निश्चित रूप से एक ना एक दिन अपने लक्ष्य स्थान को प्राप्त करके पुनः पुनरागमन नहीं करेगा। वह अनुपम, अनादि काल से अप्राप्य अत्यंत दुर्लभ, अत्यंत सरल एवं प्रशस्त पथ हुआ-''**सम्यक् दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः।**'' सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र तीनों का एकीकरण ही अनुपरागमन पथ है।

दंसणणाण चरित्ताणि मोक्खमग्ग जिणा विति।

"Self reverence, self knowledge and self control, these three alone lead life to sovereign power."

आत्मविश्वास, आत्म ज्ञान एवं आत्म नियंत्रण तीनों मिलकर जीवन को एक महान् शक्ति की ओर ले जाते हैं।

The unity of heart, head and hand leads to liberation.

हृदय (श्रद्धा) मस्तिष्क (ज्ञान) हस्त (आचरण) के ऐक्य से मुक्ति प्राप्त होती है, यह पथ पथिक को अपने लक्ष्य स्थल में पहुँचा देते हैं, एवं पथिक वहाँ पहुँचकर अनादि कालीन गमनागमन के पथक्लांत से निवृत्ति होकर भविष्यत अनंतकाल अनुपरागमन करके वहाँ कृत-कृत्य होकर अनंत सुख का अनुभव करता है अतः इस पथ को धर्म भी कहते है। '**यः कर्म निवर्हणम्: संसार दुखतः सत्त्वान् यो**

धरत्युत्तमे सुखे सः धर्मः।' अर्थात् जो कर्मों के नाशक, गमनागमन के (संसार) दुःखों से जीवों को निकालकर अपुनरागमन स्थल में (मोक्ष) में पहुँचा देता हैं, उसको धर्म कहते हैं। इससे विपरीत जो पथिक को अलक्ष्य स्थल में (संसार) में गमनागमन करता है वह दुःख होने के कारण पुनरागमन पथ (अधर्म) है अर्थात् '**यदि प्रत्यनीकानी भवन्ति भव पद्धति।**' जो सुख देने वाला है वह धर्म है जो धर्म है वह वस्तु का अपना स्वभाव है '**वत्थु सुहावो धम्मो।**'

"The religion is the characteristic of the substance."

जो अपना स्वभाव है उसका ही सेवन करना चाहिए अर्थात् अपने स्वभाव में रमण करना ही अपुनरागम पथ है, निश्चय से यह पथ पथिक का (आत्मा) का स्वभाव है।

दंसणणाण चरित्ताणि सेविदव्वाणि साहुणा णिच्चं।
ताणि पुण जाण तिण्णिवि अप्पाणं चेव णिच्छयदो।। (स.सा 19)

Right belief, knowledge and conduct should always be persued by a saint from the practicle stand point know all these three again, to be the soul itself from the real-stand-point.

यह पथ अन्य कोई अचेतन पदार्थों से बनाया हुआ नहीं है, क्योंकि यह पथ अन्य अचेतन द्रव्य में पाया नहीं जाता है '**दंसणणाण चरित्तं किंचिवि णत्थि दु अचेदणे विसए।**'

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र आत्मा का स्वभाव होने पर भी स्वयं की दुर्बलता का सुयोग लेकर मिथ्या दर्शन, ज्ञान, चरित्र आत्मा को अनादि से चतुर्गति में गमनागमन करा रहे हैं। जब पथिक कालादि लब्धि प्राप्त करके त्रयात्मक अपुनरागमन पथ को प्राप्त कर लेता है तब वह अपने लक्ष्य के अभिमुख गमन करना प्रारंभ कर लेता है एवं संपूर्ण त्रयात्मक पथ को प्राप्त करने के बाद वहाँ कृत-कृत्य होकर निवास करता है। वह त्रयात्मक पथ हुआ-1. '**दर्शनमात्मविनिश्चत**' (आत्मा का निश्चय करना सम्यक्दर्शन है।) 2. '**आत्मपरिज्ञानमिष्यतेबोधः**' आत्म का परिज्ञान सम्यक् ज्ञान है। 3. '**स्थितिरात्मानि चारित्रं**' आत्मा में ही रहना सम्यक् चारित्र है।

जब पर्यार्यार्थिक दृष्टि से देखते हैं तब यह पथ त्रयात्मक है किन्तु जब द्रव्यार्थिक दृष्टि से देखते हैं तब वह पथ शुद्ध आत्मा ही है।

चतुर्गति के पथिक के जब पंचम गति प्राप्त करने का समय उत्कृष्ट से अर्द्ध

पुद्गल परावर्तनकाल एवं जघन्य से अंतर्मुहूर्त काल बाकी रह जाता है तब उसको सम्यक् मार्ग का श्रद्धान (सम्यक् दर्शन) होता है, श्रद्धान के साथ-साथ उसको सम्यक् ज्ञान हो जाता है। उस समय उसके आनंद-अश्रु के साथ-साथ दुःखाश्रु बहने लगते हैं। अनंत कालीन पथ भ्रष्ट, क्लांत पथिक जब अपने पथ को प्राप्त कर लेता है तब आनंद-अश्रु विगलित करता है एवं पूर्व के स्वयं की भूल के कारण को स्मरण करके दुःखाश्रु विगलित करता है। लक्ष्य स्थल में निश्चित रूप में पहुँचा देने के पथ को प्राप्त करके वह लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उस ओर अपना पदक्षेप (सम्यक् चारित्र) प्रारंभ कर देता है। जितना-जितना वह अग्रसर होता है उतना-उतना अपने लक्ष्य स्थल के निकट होता जाता है। इस प्रकार त्रयात्मक मार्ग में से अपने लक्ष्य स्थल में पहुँच जाता है। यदि एक भी अंग कम हो जायेगा तब वह अपने लक्ष्य स्थल में प्रवेश नहीं कर सकता। कहा है-

हतं ज्ञानं क्रिया हीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया।
धावन् किलान्धको दग्धः पश्यन्यपि च पंगुलः।। (त.रा)
संयोगमेवहि वदंति तज्ज्ञा नह्येा चक्रेण रथः प्रयाति।
अंधच पंगुश्च वनं प्रविष्टो तौ संप्रयुकतौ नगरं प्रविष्टो।।

चारित्र के बिना ज्ञान नष्ट है अर्थात् किसी काम का नहीं एवं ज्ञान के सहचारी दर्शन भी किसी काम का नहीं। जिस तरह वन में आग लग जाने पर उसमें रहने वाला पंगु मनुष्य वहाँ से निकल जाने के मार्ग को जानता है कि 'इस मार्ग से जाने पर मैं अग्नि से बच सकूँगा' इस बात का उसको श्रद्धान भी है परन्तु चलने रूप क्रिया (चारित्र) नहीं कर सकता इसलिए वहीं जलकर नष्ट हो जाता है। उसी प्रकार ज्ञान (ज्ञान के सहचर दर्शन) रहित क्रिया (चारित्र) भी निरर्थक है जिस प्रकार वहीं रहने वाला अंधा जहाँ-तहाँ दौड़ने रूप क्रिया करता है किन्तु न उसको मार्ग का ज्ञान एवं श्रद्धान ही है कि यह निश्चित मार्ग नगर में पहुँचाने वाला है। इसलिए वह वहीं जलकर नष्ट हो जाता है।

दो चक्र वाला रथ एक चक्र से गमन नहीं कर सकता। उसी प्रकार अकेले सम्यक् दर्शन या सम्यक् ज्ञान या सम्यक् चारित्र से मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता क्योंकि यह सिद्धांत है जो काम तीन कारणों से होता है वह कार्य एक किम्बा दो कारणों से नहीं हो सकता। तीनों ही कारणों के समवाय से ही उस कार्य की सिद्धि हो सकती है,

जिस प्रकार वन में आग लगने पर जब अंधा और लंगड़ा पृथक्-पृथक् रहते हैं तब तो वे वहीं जलकर नष्ट हो जाते हैं, किन्तु जिस समय वे मिल जाते हैं अर्थात् अंधे के कंधे पर लंगड़ा बैठकर अंधे को रास्ता दिखावे, अंधा उसके अनुसार क्रिया करे तो दोनों ही नगर में आ सकते हैं। इसी प्रकार सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चारित्र तीनों का समावय ही मोक्ष मार्ग है। '**अनन्ताः सामयिक सिद्धा**' से भी सिद्ध होता है कि तीनों का समवाय ही मोक्ष मार्ग है, ज्ञान रूप आत्मा के तत्त्व श्रद्धानपूर्वक ही सामायिक रूप चारित्र हो सकता है। सामयिक अर्थात् पाप योगों से निवृत्त होकर अभेद समता और वीतरागता में स्थित होना है।

इस त्रयात्मक मार्ग में जिसके नेतृत्व में कार्य प्रारंभ होता है वह हुआ सम्यक् दर्शन। क्योंकि '**त्तस्मिन् सत्येव यतो भवति ज्ञान चारित्रंच।**' सम्यक् दर्शन के होने पर ही सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चारित्र होता है। जिस प्रकार प्रथम में एकादि संख्या के बिना अनेक शून्य '0' का मूल्य कुछ नहीं होता किन्तु प्रथम में एकादि संख्या के सद्भाव में उत्तर के शून्य के मूल्य में दश गुना वृद्धि हो जाती है। उसी प्रकार सम्यक् दर्शन के बिना '**शमबोध वृत्तं तपसां पाषाण स्यैव गौरवं पुसः**' हो जाता है। अर्थात् सम्यक् दर्शन के बिना कषायों के उपशमन, ज्ञान, चारित्र और तप इनका महत्व पाषाण के भारीपन के समान व्यर्थ है। '**पूज्य महामणेरिव तदेव सम्यक्त्व संयुक्तम्**' परन्तु वही उनका महत्व यदि सम्यक्त्व से सहित है तो वह मूल्यवान मणि के महत्व के समान पूजनीय है। इसलिए सम्यक् दर्शन मोक्ष मार्ग में ज्ञान, चारित्र की अपेक्षा श्रेष्ठ एवं कर्णधार के समान है। परन्तु सम्यक् दर्शन से ही एकांत से मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि दर्शन मात्र से ही मोक्ष माना जाय तो सम्यक् दर्शन प्राप्ति के बाद उत्कृष्ट से अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल पर्यंत क्यों संसार में परिभ्रमण करते हैं? क्षायिक सम्यक् दृष्टि के दर्शन मोहनीय के समस्त कर्म क्षय हो जाने के बाद भी वह उत्कृष्ट से आठ वर्ष अंतर्मुहूर्त कम पूर्व कोटि अधिक तैतीस सागर पर्यंत संसार में क्यों भ्रमण करते हैं? सम्यक् दर्शन की पूर्णता 12वें गुणस्थान में हो गई तो भी संसार में उत्कृष्ट से 8 वर्ष कुछ अंतर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक क्यों विहार करते हैं? इन समस्त प्रश्नों का उत्तर एक ही है-अभी तक सम्यक् ज्ञान एवं सम्यक् चरित्र की पूर्णता का अभाव।

यदि एकांत से ज्ञान मात्र से ही मोक्ष माना जाय तो, एक क्षण भी पूर्ण ज्ञान के

बाद संसार में ठहरना नहीं हो सकेगा, उपदेश, तीर्थ-प्रवृत्ति आदि कुछ भी नहीं हो सकेंगे। परन्तु 13वें गुणस्थान में संपूर्ण ज्ञान होने पर भी उत्कृष्ट से 8 वर्ष कुछ अंतर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष तक मंगल विहार करते हुए अपुनरागमन पथ का उपदेश देते हैं। यह संभव ही नहीं कि दीपक भी जल जाये और अंधेरा भी रह जाय। उसी तरह यदि ज्ञान मात्र से ही मोक्ष हो तो वह संभव ही नहीं हो सकता कि ज्ञान भी हो जाय और मोक्ष नहीं हो। पूर्ण ज्ञान होने पर भी कुछ संस्कार (चार अघातिया कर्म) ऐसे रह जाते हैं जिसके नाश हुए बिना मुक्ति नहीं हो सकती। इससे यह सिद्ध हुआ कि संस्कार क्षय से मुक्ति होगी ज्ञान मात्र से नहीं। फिर इन संस्कारों का क्षय ज्ञान से होगा या अन्य कारण से? यदि ज्ञान से है तो ज्ञान होते ही संस्कारों का क्षय भी हो जायेगा और उत्तर क्षण में ही मोक्ष हो जाने से तीर्थोपदेश आदि नहीं बन सकेंगे। यदि संस्कार क्षय के लिए अन्य कारण अपेक्षित हो वह चारित्र ही हो सकता है, अन्य नहीं। मोक्ष प्राप्ति रूप कार्य तीन कारणों से होता है। 13वें गुणस्थान तक दर्शन एवं ज्ञान की पूर्णता हो गई तो भी कार्य नहीं हुआ। यह नियम है कि 'प्रतिबंधक का अभाव होने पर सहकारी समस्त सामग्रियों के सद्भाव को समर्थ कारण कहते हैं एवं समर्थ कारण के होने पर अनंतर समय में कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है।' अतः 'पारशेशिक' न्याय से सिद्ध हुआ कि संस्कारों का पूर्ण रूप से नाश का अभाव सम्यक्-चारित्र की पूर्णता के अभाव से ही है। 14वें गुणस्थान में चारित्र की पूर्णता से प्रतिबंधक का नाश होता है एवं अनंतर समय में मोक्ष रूपी कार्य की उत्पत्ति नियम से होती है। इसमें अनंतर पूर्व-क्षण-वर्ती मोक्ष चरित्र पर्याय उपादान कारण है, और उत्तर क्षण रूपी पर्याय कार्य है। इससे सुनिश्चित सिद्ध हुआ मोक्ष रूपी कार्य में उपादान कारण सम्यक् चारित्र है। सम्यक् चारित्र की पूर्णता शैलेशों के अर्थात् 14वें गुणस्थान में होता है।

सीलेसिं संपत्तो णिरूद्धणिरवसेस आसवोजीवो।
कम्मरयविप्पमुक्को गयजोगी केवली होदि।। (गो.सा.जी. 65)

जो संपूर्ण 18000 शील का (चारित्र के) स्वामी हो चुका है और पूर्ण संवर तथा निर्जरा का सर्वोत्कृष्ट एवं अंतिम पात्र होने से मुक्तावस्था के सम्मुख है। समस्त प्रकार के योग से रहित है। अनुपरागमन पथ के यात्री, अपुनरागमन पथ के समर्थ कारण हैं, उन्हीं को ही अयोगकेवली किम्बा शील का अर्थात् चारित्र का स्वामी कहा

जाता है।

अपुनरागमन पथ के पथिक इस चारित्र के परम उपकार को हृदयगम करके उसके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए चारित्र की अन्यन्य स्तुति करते हैं एवं उसके आशीर्वाद की कामना करते हैं।

यथा :-

शिव-सुख फलदायि यो दयाछाय-योद्धः,
शुभ-जन-पथिकानां खेदनोदे समर्थः।
दुरितरविजतापं प्रापयन्नतं भावं,
स भव विभव हान्यै नोस्तु चारित्रवृक्षः।। (वीर भक्ति)

जो पथिकों को मोक्ष रूपी शाश्वतिक अनुपम सुख रूपी फल को देने वाला है, शांति प्रदान करने वाला, दया रूप छाया से प्रशस्त है, जो कि पथिकों के संताप को दूर करने में समर्थ है, पाप रूप सूर्य के संताप का अंत करने वाला है वह चारित्र वृक्ष हमारे संसार में जो गमनागमनादि भव है, उसके विनाश के लिए होवे।

पथिकों ने केवल अत्यंत मधुर, लालित्य, लच्छेदार शब्द से स्तुति करके अपना मनमना पांडित्यपना प्रगट करके कालादि लब्धि के ऊपर अपने कर्त्तव्य को तिलांजलि देकर प्रमादि होकर संसार भोगों में लिप्त नहीं रहे परन्तु प्रमाद त्याग करके अनगुह्यबलवीर्य के अनुसार चारित्र का पालन किये।

चारित्रं सर्व जिनैश्चरितं प्रोक्तं च सर्वशिष्येभ्यः।
प्रणमामि पंचभेदं पंचम चारित्र लाभाय।। (वीर भक्ति)

समस्त तीर्थंकरों ने स्वयं चारित्र को धारण किया एवं समस्त शिष्यों को चारित्र धारण करने का उपदेश दिये। अतः समस्त कर्मों के क्षय के साधक पंचम यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति के लिए सामायिकादि पंच भेद से युक्त चारित्र को मैं प्रणाम करता हूँ।

सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र में पूर्व की प्राप्ति होने पर उत्तर की प्राप्ति भजनीय है अर्थात् हो भी न भी हो। परन्तु उत्तर की प्राप्ति में पूर्व की प्राप्ति निश्चित है वह होगा ही। जिसे सम्यक् चारित्र होगा उसे सम्यक् ज्ञान और सम्यक् दर्शन होंगे ही परन्तु जिसे सम्यक् दर्शन है उसे पूर्ण सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र हो भी और न भी हो। क्षायिक सम्यक् दर्शन की प्राप्ति होने पर क्षायिक ज्ञान हो भी और न भी हो, किन्तु जहाँ क्षायिक ज्ञान है वहाँ क्षायिक सम्यक् दर्शन निश्चित रूप में

ही है, परन्तु वहाँ संपूर्ण क्षायिक सम्यक् चारित्र हो भी न भी हो। किन्तु जहाँ संपूर्ण क्षायिक चारित्र है वहाँ संपूर्ण क्षायिक सम्यक् दर्शन एवं संपूर्ण क्षायिक ज्ञान होगा ही, इस प्रकार सम्यक् चारित्र में त्रयात्मक मार्ग रहेगा ही।

चारित्र की उपादेयता इहलोक, परलोक, देश, समाज, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, व्यक्तिगतादि प्रत्येक क्षेत्र में व्यापक है, यह सारा विश्व स्वीकार करता है। यथा-

If wealth is lost nothing is lost. If health is lost something is lost. If character is lost everything is lost.

यदि धन नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट नहीं हुआ क्योंकि धन पुद्गल की पर्याय है एवं पुण्य का दास है। पुद्गल का स्वभाव मिलना एवं वियोग होना है। धन आत्मा से अत्यंत भिन्न है। यदि स्वास्थ्य नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट हुआ क्योंकि '**शरीर माध्यम् खलु धर्म साधनम्**' अर्थात् शरीर के माध्यम से धर्म साधन होता है, अतः स्वास्थ्य नष्ट होने से धर्म में आघात होने से कुछ नष्ट होता है। यदि चारित्र नहीं रहा तो सर्वस्व ही नष्ट हो गया क्योंकि चारित्र जीव का स्वभाव, सर्वस्व धर्म है। '**चारित्तं खलु धम्मो**' अर्थात् चारित्र निश्चय से धर्म है। धर्मों के समुदाय ही धर्मी है। यदि धर्म ही नहीं रहा तब धर्मी (वस्तु) कैसे रह सकता है, जैसे अग्नि का प्रकाशत्व, उष्णत्व, पाचकत्व आदि धर्म नहीं रहेगा तो अग्नि ही कैसे रह सकती है? किन्तु जिस पथिक का अपुनरागमन पथ प्राप्त करने की समयावधि अत्यंत अधिक है उसकी प्रवृत्ति विपरीत होती है। यथा-

'**जानामि धर्म न च मे प्रवृत्ति, जानामि अधर्म न च मे निवृत्तिः।**'

धर्म को जानूँगा किन्तु धर्म में प्रवृत्ति नहीं करूँगा अधर्म को जानूँगा किन्तु अधर्म से निवृत्ति नहीं करूँगा। ऐसी विचारधारा स्वतंत्र न होकर स्वछंद होती है।

As like this-If character is lost nothing is lost. If health is lost something is lost. If wealth is lost everything is lost.

यदि चरित्र नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट नहीं हुआ क्योंकि यह तो बाह्य वस्तु है। यदि स्वास्थ्य नष्ट हुआ तो कुछ नष्ट हुआ। क्योंकि धन कमाने में एवं भोग करने में आघात हुआ। किन्तु धन नष्ट हुआ तो सर्वस्य नष्ट हो गया। क्योंकि-Gold is God and God is gold.

अर्थात् सुवर्ण/धन भगवान् है एवं भगवान् सुवर्ण है, अतः धन नष्ट होने से सब कुछ नष्ट हो गया। इस प्रकार जिसका श्रद्धान ज्ञान एवं आचरण है वह अपने

गमनागमन पथ को प्रशस्त कर रहा है। परन्तु जो अपुनरागमन के पथिक है उनका आचरण इससे विलक्षण होता है।

दया दम त्याग समाधि संसतैः पथि प्रयाहि प्रगुण प्रयत्नवान्।
नयत्यवश्यं वचनामगोचरं विकल्पदूरं परमं किमप्यसौ।। (आत्मा. 107)

हे अपुनरागमन पथ के पथिक! तू अत्यंत प्रयत्नशील होकर सरल भाव से धर्म के मूलदया, गमनागमन पथ के अत्यंत दुर्निवार 5 इन्द्रिय रूपी अश्व का दमन, अपुनरागमन पथ के बोझ स्वरूप अंतरंग एवं बहिरंग 24 प्रकार के परिग्रह का त्याग और अपुनरागमन पथ में गति करने रूप ध्यान की परम्परा के मार्ग में प्रवृत्त हो जाओ, वह मार्ग निश्चय से तुम्हारा अनंत काल से अप्राप्य लक्ष्य स्थल जो अत्यंत उत्कृष्ट निरापद स्थान को प्राप्त करता है जो वचन से अनिर्वचनीय एवं समस्त गमनागमन विकल्पों से रहित है; वह ही तुम्हारा अविनश्वर अपुनरागमन पथ का फल है। शाश्वतिक सुख, अनुपम, आह्लाद, सच्चिदानंद रूप है। अतएव अनादि कालीन पथ भूले पथिक तुम अपने पथ को प्राप्त करके पुनः अवहेलीत भाव से उस पथ को त्याग करके गमनागमन पथ में अनंत काल (अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल) तक परिभ्रमण करके दुःख, क्लेश, संताप उठाने के पात्र मत बन।

।।जय तु अपुनरागमः पथः।।

(आ. कनकनन्दी की क्षुल्लक अवस्था का लेख, अकलूज, महाराष्ट्र, 1979)

सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म का स्वरूप

विश्व के प्रत्येक द्रव्य को जो स्व-स्व शुद्ध स्वभाव है वह ही सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म है। इस लेख में जीव संबंधी विचार-विमर्श करेंगे। जीव में अनंत धर्म होते हैं उसमें से कर्त्तव्य धर्म के बारे में प्रकाश डाल रहे हैं-

1. **सत्य**-जो यथार्थ हो, पवित्र हो, अनंत शक्तियों का पिण्ड हो, समस्त गुण धर्म अच्छाइयों का आधार हो-स्त्रोत हो, उसे सत्य कहते हैं। जो विश्व में शुद्ध रूप में विद्यमान हो, उसे परम सत्य जानना चाहिए। जीव की भावात्मक पवित्रता, आध्यात्मिक सत्य है। पवित्रता से रहित सत्य बोलना, धार्मिक क्रिया-काण्ड करना भी असत्य है अधर्म है। भाव की पवित्रता रहित सत्य बोलना कभी-कभी असत्य से भी अधिक भयंकर हो सकता है जैसा कि शिकारी को शिकार का पता बताना। दुष्ट भाव से

सहित चोर, डाकू, वेश्या, दुष्ट, बदमाशों के मीठे वचनों से भी अधिक सत्य पवित्र भाव से युक्त गुरु, सज्जनों के कठोर, कडवेदि वचन है। भलाहकारी, निंदात्मक कठोर बकवास, अहंकारपूर्ण, फूट डालने वाला सत्य वचन भी असत्य है। उचित वचन का पालन नहीं करना प्रामाणिकता का अभाव, निर्धारित समय में काम नहीं करना, कूट-कपट करना, चोरी-डकैती, मिलावट, कालाबाजारी, ठगी करना एवं स्व योग्य कर्त्तव्यों का पालन नहीं करना दूसरों की हँसी उड़ाना आदि भी असत्य है।

2. समता/अहिंसा–आत्मा की समरसता शांति को नष्ट नहीं करना या हत्या/हिंसा नहीं करना आदि को समता/अहिंसा कहते है। प्रत्येक जीव का शुद्ध स्वरूप समता, अहिंसा, सुख शांतिमय होने के कारण प्रत्येक जीव सुख-शांति को चाहता है। भले कोई जीव ज्ञान या धर्म नहीं चाहता हो या कोई जीव धन या नाम नहीं चाहता हो तथापि प्रत्येक जीव सुख-शांति तो चाहता ही है। जैसा कि नास्तिक मिथ्यादृष्टि धर्म नहीं चाहता? तथापि सुख-शांति तो चाहता है तथा निःस्पृह साधु-संत धन या नाम नहीं चाहते है तथापि सुख-शांति चाहते हैं। सर्व यहाँ तक कि वनस्पति, कीट, पतंग आदि अविकसित क्षुद्र जीव भी सुख-शांति चाहते हैं। ऐसी सर्व जीवों के सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्येष्ठ, प्रिय वस्तु को बाधा पहुँचाना, नष्ट करना विकृत करना पाप है, अमर्ध है, अपराध है। स्वयं की समरसता/शांति की हत्या किये बिना दूसरों की सुख-शांति की हत्या नहीं हो सकती है। अतएव स्वहिंसा/भावहिंसा ही यथार्थ से हिंसा है और दूसरों की जो हिंसा होती है उसे द्रव्य हिंसा/गौण हिंसा कहते है। असत्य क्रूरता, घमण्ड, मायाचारी, तृष्णा, घृणा, कठोरता, चोरी आदि से आत्मा की समरसता/शांति की हत्या होती है अतः यह सब हिंसा ही है। अतः शरीर के अवयवों को नष्ट करने रूप द्रव्य हिंसा से भी बड़ी हिंसा क्रूरता, घृणा, तृष्णादि रूपी भाव हिंसा है। कृषि कार्य से आनुशांगिक रूप से अनेक जीव मरने पर भी कृषक से भी ज्यादा हिंसक वह व्यापारी हैं जो कि मिलावट करता है, शोषण करता है, कृत्रिम रूप से अभाव उत्पन्न करके अधिक मूल्य से माल बेचता है, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक तथा हिंसात्मक बीड़ी, तम्बाकू, पान-मसाला, शराब, चर्म निर्मित वस्तु, चर्बी मिश्रित तथा अखाद्यादि मिश्रित वस्तु बेचता है, दूसरों की मजबूरियों का लाभ उठाकर ब्याजादि के माध्यम से शोषण करता है। दूसरों की प्रगति, प्रशंसा, अच्छाइयों से डाह करना, उसमें बाधा डालना, सार्वजनिक संपत्ति आदि का दुरूपयोग करके, अस्वच्छ करके दूसरों को बाधा

पहुँचाना भी हिंसा है। राष्ट्र की रक्षार्थे, दूसरों की रक्षार्थे आत्मा की रक्षार्थे या न्याय धर्म की रक्षार्थे जो विपुल मनुष्यों को भी हत्या हो जाती है उससे भी गर्हित हिंसा वह है जो हत्या धन, भोजन, मंत्र, सिद्धि, देवी-देवता की प्रसन्नता के लिए या धर्म के नाम पर एक भी पशु-पक्षी या मनुष्य की की जाती है। स्वयं हिंसा करना, हिंसा करने के लिए प्रेरित करना, हिंसा के लिए सहमत होना, हिंसा की योजना बनाना, हिंसा में योगदान देना आदि भी हिंसा है। कदाचित् हिंसा करने वालों से भी वह अधिक हिंसक है जो हिंसा की योजनादि बनाता है। क्रूर, कुटिल, असहिष्णु भाव रखता है, घृणारूपी अग्नि से जलता रहता है। जैसा कि विष पीकर मरने वाला तो स्वयं उस विष से अधिक से अधिक एक बार ही मरेगा परन्तु विष पिलाने वाला, उसे बेचने वाला विपुल जीवों को मार डालेगा। इसी प्रकार शराब, बीड़ी, तम्बाकू, माँसादि सेवन करने वालों से भी उसका व्यापार करने वाला, झूठ बोलने वालों से भी झूठ से व्यवसाय (झूठे वकील, जज, व्यापारी, भ्रष्टाचारी, नेतादि) करने वाले, चोर-डाकू, ठगों से भी इस कार्य से प्राप्त धन का व्यापार करने वाले, उन्हें नियोजित करने वाले, उन्हें संरक्षण देने वाले, वेश्यागमन करने वालों से भी वेश्याओं का व्यापार करने वाले अधिक हिंसक/पापी/अधर्मी है। इसलिए केवल शरीर से द्रव्य हिंसा आदि पाप नहीं करने वालों को धार्मिक नहीं मान लेना चाहिए। जैसा कि कुछ युद्ध में राजा, सेनापति आदि युद्ध नहीं करते हैं परन्तु मुख्य कारण सूत्रधार वे ही होते हैं। इसलिए साक्षात् द्रव्य युद्ध नहीं करने पर भी वे भाव युद्ध करते हैं। इसलिए वे हिंसा के पूर्ण भागी होते हैं। इसी प्रकार वर्तमान काल में अनेक भ्रष्टाचार, घोटाला, हत्या, बलात्कार के प्रछन्न मुख्य कर्णधार/सूत्रधार नेता, मंत्री, नौकरशाही, पुलिस, उद्योगपति, व्यापारी आदि होने से वे भी इन पापों के पूर्ण उत्तरदायी है।

3. सापेक्ष विचार/सहिष्णुता (उदारता)-विश्व के प्रत्येक द्रव्य/घटक/घटनाओं के अनेक गुण धर्म, पक्ष/कारण होने के कारण उन्हें उन-उन दृष्टियों से देखना चाहिए/समझना चाहिए/कथन करना चाहिए। इसे ही अनेकांत सिद्धांत, वैचारिक अहिंसा, उदारता, सहिष्णुता, सापेक्ष सिद्धांत, स्याद्वाद आदि कहते हैं। इसके कारण बौद्धिक विकास, भावात्मक-विशालता, आत्मा की पवित्रता, कथन में लचीलापन/मृदुता आती है तथा संकीर्णता, कटुता, झगड़ा, कलह, द्वेष, फूट, युद्ध, विग्रह, हिंसा आदि घटती है। यह गुण उस व्यक्ति में प्रगट होता है जो अंधविश्वास, संकीर्णता,

घमण्ड, पूर्वाग्राही, दवाग्राही, मायाचारी आदि दुर्गुणों से रहित होता है।

भूत का विश्व इतिहास और वर्तमान का प्रायोगिक ज्ञान यह सिद्ध करता है कि व्यक्ति परिवार, समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर जो कुछ वाद-विवाद, विसंवाद, कलह, झगड़ा, युद्ध होते हैं उसमें मुख्य कारण संकीर्णता/असहिष्णुता/अनुदारता है। अतएव व्यक्ति से लेकर विश्व शांति तक के लिए सापेक्ष विचार, सहिष्णुता की आवश्यकता है। धार्मिक इतिहास, पुराण के अध्ययन से ज्ञात होता है कि धर्म में भी जो मत, मतान्तर, फूट, कलह, युद्ध होते हैं वे भी असहिष्णुता के कारण हैं। धर्म के प्रचारक यथा-तीर्थंकर, पैगम्बर, ईसा-मसीह, साधु-संत जो उपदेश करते हैं आगे जाकर उनके अनुयायी उनके ही सिद्धांत को लेकर या उनको ही लेकर झगड़ा, कलह, कूट आदि करते हैं। आज जैन धर्म, हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म, मुस्लिम धर्म में अपने-अपने एक ही ग्रंथ एवं एक ही धर्म प्रचारक को लेकर कूट से लेकर युद्ध तक करते रहते हैं। इसी प्रकार राजनीति में, समाज में, परिवार में, ग्राम में, नगर में, प्रांत में, राष्ट्र में, अंतर्राष्ट्र में इस असहिष्णुता के कारण विषमता फलती-फूलती है।

प्रकारान्तर से सत्य, अहिंसा, अचौर्य, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, सत्-विश्वास, सद्विज्ञान, सदाचार, क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, पवित्रता, संयम, तप, त्याग, शालीनता, विनम्रता, परोपकारिता, दानशीलता, सहिष्णुता, उदारता आदि ही सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय धर्म हैं। इस धर्म के सहायक हैं स्वावलंबन, सहकार, समयानुबद्धता, प्रमाणिकता, साहस, स्वच्छता, स्वास्थ्य, योग्य परिस्थिति, कर्त्तव्यनिष्ठा, कर्मशीलता योग्य साधनादि।

विश्व में जो विभिन्न नामधारी धर्म/पंथ/संप्रदाय मजहब है या धार्मिक रीति-रिवाज, पूजा-पाठ, तीर्थ यात्रा, पर्व, महोत्सव, धार्मिक स्थल, मूर्ति, धार्मिक ग्रंथ, वेशभूषा, भाषा, पुराण, इतिहास, किम्वदन्ती, परम्परा, मंत्र, दीक्षा, शिक्षा, देवी-देवता आदि हैं वे सब धर्म के लिए अधिक से अधिक साधक निमित्त हो सकते हैं। इसे ही धर्म मान लेना महान् भूल होगी। जैसे कि 'आम' शब्द को ही यथार्थ से आम मानना, अहिंसा शब्द को ही यथार्थ से अहिंसा मान लेना, भारत के नक्शा को ही यथार्थ से भारत मान लेना।

सत्य में लोकालोक (विश्व एवं प्रति विश्व) स्थित समस्त छः द्रव्य/सात तत्त्व एवं नौ पदार्थ गर्भित है तो समता में समस्त मुनि तथा श्रावक धर्म अंतर्गत है तथा

सापेक्ष सिद्धांत में समस्त वैचारिक और कथन प्रणाली गर्भित है। अतएव सत्य, समता एवं सापेक्ष ही सार्वभौम, वैश्विक, सर्वोदय, धर्म है। अतः सत्य ही परमेश्वर समता ही सदाचार और सापेक्ष ही समन्वय/शुभाशय है।

आध्यात्मिकता ही परम श्रेष्ठ-ज्येष्ठ-सत्य-धर्म-सुख

(चाल : आत्मशक्ति....., सायोनारा....., भातुकली.....)

परम-श्रेष्ठ परम-ज्येष्ठ है...परम-सत्य है आध्यात्मिक...
परम-पावन परम-उदार है...परम-धर्म/(सुख) है आध्यात्मिक...(ध्रुव)...

परम-नियम परम-न्याय है...परम-संविधान (है) आध्यात्मिक...
परम-विज्ञान परम-गणित है...परम-कला है आध्यात्मिक...

परम-मर्यादा परम-शासन है...परम-संयम है आध्यात्मिक...
परम-अनुशासन-दया-दान-त्याग...परम-प्रार्थना-पूजा आध्यात्मिक...(1)...

महान् मंत्र-यंत्र व तंत्र...महान्-साधना है आध्यात्मिक...
महान् विद्या-शिक्षा व ज्ञान...महान्-विज्ञान है आध्यात्मिक...

सर्वोदय व परम-विकास (है)...परम-समता है आध्यात्मिक...
परम-अहिंसा परम-शुद्धता...परम से परम (है) आध्यात्मिक...(2)...

परम-सुख है परम-शांति...परम-उपलब्धि है आध्यात्मिक...
परम-वैभव है परम-शक्ति...परम-महानता है आध्यात्मिक...

हर जीव के शुद्ध-बुद्ध-आनंद...परम-स्वरूप है आध्यात्मिक...
सच्चिदानंद सत्य-शिव-सुंदर...परम-पावन है आध्यात्मिक...(3)...

आध्यात्मिकता में कोई बंधन न होता...तन-मन व इन्द्रियों का...
राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-लोभ...ईर्ष्या-घृणा व भेद-भावों का...

सत्ता-संपत्ति भाई बंधु कुटुम्ब...अपना-पराया शत्रु-मित्र का...
पंथ-मत-जाति-राष्ट्र-भाषा का...नहीं होता बंधन समाज का...(4)...

रूढ़ि-परम्परा-राजनीति-कानून का...लौकिक-नियम व संविधान का...
अपेक्षा-उपेक्षा या प्रतीक्षा का...ख्याति-पूजा-लाभ-प्रशंसा का...

जन्म-मरण व रोग-शोक का...निन्दा-चुगली या अपमान का...

आडम्बर-दिखावा-ढोंग-पाखण्ड का...अंधानुकरण-पर-प्रपञ्च का...(5)...

समस्त बंधन व सीमा रहित...आध्यात्मिक होता है आकाश सम...
धनी-गरीब व काला-गौरा परे...निराबाध-निर्बंध-परमाणु सम...

इसी हेतु राजा-महाराजा-चक्रवर्ती...साधु बन पाते हैं आध्यात्मिकता...
आध्यात्मिकता ही निर्बंध-निराबाध...अतः 'कनक' का लक्ष्य आध्यात्मिकता...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 23.02.2016, रात्रि 8.25

मेरी शक्तियों का सम्वर्द्धन चाहता हूँ!

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा....., आत्मशक्ति से ओतप्रोत.....)

मेरी शक्तियों का मैं सम्वर्द्धन चाहता हूँ...(क्षमताओं, योग्यताओं, उपलब्धियों)
अनन्त अक्षय तक पूर्ण चाहता हूँ...
दुरुपयोग शक्तियों का नहीं चाहता हूँ...उपयोग यथायोग्य करना चाहता हूँ...मेरी...(1)

मुझमें हैं अनंत अक्षय शक्तियाँ...अभी तो प्रगट हैं स्वल्प ही शक्तियाँ...
उपलब्ध शक्तियों से मुझे नहीं है घमण्ड...प्राप्त शक्तियाँ तो सभी क्षायोपशमिक...
क्षायोपशमिक (शक्ति) परे मुझे चाहिए क्षायिक...अनंत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य अक्षय...
शुद्ध-बुद्ध व शाश्वत आत्म स्वभाव...निर्मल निराबाध निर्बंध स्वभाव...(2)...

इसी हेतु ही मैं ध्यान-अध्ययनरत...समता शांति व निस्पृहता सहित...
ख्याति पूजा लाभ व द्वंद्व रहित...राग द्वेष मोह काम मद रहित...
अपेक्षा-उपेक्षा व प्रतीक्षा रहित...ईर्ष्या तृष्णा घृणा प्रतिस्पर्द्धा रहित...
निस्पृह निराडम्बर व ढोंग रहित...सरल-सहज व संतोष युक्त...(3)...

दुरुपयोग से शक्तियाँ होती हैं क्षीण...पापबंध से होता है आत्म पतन/(आत्म मलिन)...
अनावश्यक प्रयोग भी न करूँ शक्तियों का...दिखावा-ढोंग दुरुपयोग नहीं किसी का...
मुझे तो स्व हेतु ही शक्तियाँ बढ़ाना है...आत्महित सह विश्वहित करना है...
मेरी शक्तियों को मुझे पूर्ण पाना है...'कनकनन्दी' को स्वयं में पूर्ण होना है...(4)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 26.02.2016, प्रातः 7.10
(यह कविता प्रवचनसार के स्वाध्याय के श्रोताओं से प्रभावित होकर बनी।)

परम सत्य को जानने की मेरी साधना

(ज्ञानार्जन की मेरी साधना)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तेरे प्यार का आसरा.....)

परम सत्य को मैं जानना चाहता हूँ, इसी हेतु विविध (मैं) साधना करता हूँ।
शब्दार्थ भाषा नय निक्षेप प्रमाण, अनेकांत स्याद्वाद से (लेकर) अनुभव ज्ञान।। (1)

श्लोक- शब्दात्पद प्रसिद्धिः पदसिद्धेरर्थ निर्णयो भवति।
अर्थातत्त्वज्ञानं तत्त्वज्ञानात्परं श्रेयः भवति।। (धवला पु. 1 पृ. 10)

हिन्दी- शब्द से पद की होती है प्रसिद्धि, पद की सिद्धि से होती अर्थ की सिद्धि।
अर्थ से होता है तत्त्व का ज्ञान, तत्त्व ज्ञान से होता परम कल्याण।। (2)

शब्दज्ञान है अति ही प्राथमिक उपाय, शब्दज्ञान से परे पद ज्ञान का स्थान।
पदज्ञान से परे करता हूँ अर्थज्ञान, अर्थज्ञान से आगे करता हूँ तत्त्व का ज्ञान।। (3)

शब्दज्ञान के बिना पदज्ञान न होता, पदज्ञान बिन अर्थज्ञान भी न होता।
अर्थज्ञान बिना तत्त्वज्ञान न होता, अर्थज्ञान बिन परम/(आत्म) कल्याण न होता।। (4)

व्यवहार निश्चय व आध्यात्म नय से, नाम-स्थापना व द्रव्य भाव निक्षेप से।
परोक्ष-प्रत्यक्ष रूपी विविध प्रमाण/(ज्ञान) से, ज्ञान करता (हूँ) अनेकांत स्याद्वाद अनुभव से।। (5)

इसी हेतु विविध विषयों का करता (हूँ) ज्ञान, भाषा-व्याकरण व भाषा-विज्ञान।
दर्शन-तर्क व साहित्य ज्ञान-विज्ञान, देश-विदेशों के विविध-विधा के ज्ञान।। (6)

करता हूँ परीक्षण-निरीक्षण-मीमांसा, तुलनात्मक ज्ञान-समन्वय समीक्षा।
गुण-दोष हानि-लाभ, ग्राह्य-अग्राह्य, ज्ञान-ज्ञेय-उपेक्षा-निरपेक्ष साम्य।। (7)

प्रयोग-विविध से मैं करता हूँ निर्णय, जिससे पाता हूँ मैं अनुभव ज्ञान।
अनुभव से अनुभव को बढ़ाता जाता हूँ, कल्पना व प्रज्ञा से सीखता जाता हूँ।। (8)

हर जीव व कार्य से सीखता जाता हूँ, साहित्य लेख व कविता में भी लिखता हूँ।
अध्ययन-अध्यापन व ध्यान करता हूँ, सर्वज्ञ बनने तक 'कनक' सीखना चाहता हूँ।। (9)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 25.02.2016, रात्रि 8.38

(यह कविता प्रवचनसार के स्वाध्याय के श्रोताओं से प्रभावित होकर बनी।)

संदर्भ-

जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरा मोक्षास्तत्त्वम्। (4)

The (तत्त्व) Principles (are) जीव soul अजीव non soul आस्रव inflow (of Karmic matter into the soul) बंध bondage (of soul by Karmic Matter), संवर stopage (of inflow of Karmic matter into the soul), निर्जरा shedding (of Karmic Matter by the soul) (and) मोक्ष Liberation (of soul from Matter).

जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व है।

विश्व सत् स्वरूप है। उस सत् के दो भेद हैं। (1) जीव (2) अजीव। अजीव के पाँच भेद हैं (1) पुद्गल (2) धर्म (3) अधर्म (4) आकाश (5) काल।

यहाँ पर मोक्षमार्ग का वर्णन होने के कारण (1) जीव एवं (2) अजीव (पुद्गल, अर्थात् कार्माण वर्गणा) तथा इनकी विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन इस सूत्र में किया गया है। जैसे-जीव एवं अजीव (पुद्गल) दो मौलिक द्रव्य है। जीव में पुद्गल का प्रवेश होना आस्रव है तथा इस आस्रव से आगत पुद्गल का एक क्षेत्रावगाही होकर मिल जाना बंध है। आते हुए (आस्रव) कर्म परमाणुओं का रुक जाना संवर है। जीव के साथ बंधे हुए कर्मों का आंशिक रूप से जीव से पृथक् (अलग) हो जाना निर्जरा है। समस्त कर्मों का जीव से पूर्ण रूप से पृथक् हो जाना मोक्ष है।

उपरोक्त सात तत्त्व में (1) पुण्य (2) पाप मिला देने से नव पदार्थ हो जाते हैं। गोम्मट्टसार जीवकाण्ड में कहा है-

णव य पदत्था जीवाजीवा ताणं च पुण्णपावदुगं।
आसवसंवरणिज्जरबंधा मोक्खो न होंति त्ति।।(621) (गो.जी.)

मूल में जीव और अजीव ये दो पदार्थ हैं, दोनों ही के पुण्य और पाप ये दो-दो भेद हैं। इसलिये चार पदार्थ हुए तथा जीव और अजीव के ही आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध, मोक्ष ये पाँच भेद भी होते हैं। इसलिए सब मिलाकर नव पदार्थ हो जाते हैं।

उपरोक्त सप्त तत्त्व में से सुखार्थी सम्यक्दृष्टि मुमुक्षु जीवों के लिये कौनसा तत्त्व हेय, उपादेय, ग्रहणीय, त्यजनीय है इसका कथन करते हुए अमृतचंद्र सूरि ने

कहा है-

उपादेयतथा जीवोऽजीवो हेयतयोदितः।
हेयस्यास्मिन्नुपादानहेतुत्त्वेनास्रवः स्मृतः।।(7) (तत्वार्थ सार)
हेयस्यादानरूपेण बन्धः स परिकीर्तित;
संवरो निर्जरा हेयहानहेतुतयोदितौ।
हेयप्रहाणरूपेण मोक्षो जीवस्य दर्शितः।।(8)

इन सात तत्त्वों में जीवतत्त्व उपादेयरूप से और अजीवतत्त्व हेय रूप से कहा गया है अर्थात् जीवतत्त्व ग्रहण करने योग्य और अजीव तत्त्व छोड़ने योग्य बतलाया गया है। छोड़ने योग्य अजीवतत्त्व के ग्रहण रूप होने से बंध तत्त्व का निर्देश हुआ है। संवर और निर्जरा ये दो तत्त्व, अजीवतत्त्व के छोड़ने में कारण होने से कहे गये हैं और छोड़ने योग्य अजीवतत्त्व के छोड़ देने से जीव की जो अवस्था होती है उसे बतलाने के लिये मोक्ष तत्त्व दिखाया गया है। भावार्थ-जीव और अजीव ये दो मूल तत्त्व हैं। इनमें जीव उपादेय है और अजीव छोड़ने योग्य है, इसलिये इन दोनों का कथन किया गया है। जीव अजीव का ग्रहण क्यों करता है? इसका ग्रहण करने से जीव की क्या अवस्था होती है, वह बतलाने के लिये बंध तत्त्व का निर्देश है। जीव अजीव का सम्बन्ध कैसे छोड़ सकता है, यह समझाने के लिये संवर और निर्जरा का कथन है तथा अजीव का सम्बन्ध छूट जाने पर जीव की क्या अवस्था होती है, यह बताने के लिये मोक्ष का वर्णन किया गया है। सात तत्त्वों में जीव और अजीव ये दो मूल तत्त्व हैं और शेष पाँच तत्त्व उन दो तत्त्वों के संयोग तथा वियोग से होने वाली अवस्था विशेष है।

सात तत्त्व तथा सम्यग्दर्शन आदि के व्यवहार के कारण-
नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः। (5)

By name repres representation, privation, present, condition, their न्यास aspects (are known).

नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से उनका अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि और जीव आदि का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है।

इस सूत्र में वस्तु स्वरूप को विभिन्न दृष्टिकोण से परिज्ञान/शोध-बोध करने की प्रणाली का वर्णन है। प्रत्येक वस्तु में विभिन्न गुण-धर्म होने के कारण उसको जानने

की प्रणाली भी विभिन्न होना स्वाभाविक है। जब तक हम विभिन्न गुण-धर्म को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से नहीं देखेंगे तब तक हमको उस वस्तु-स्वरूप का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता है। इसलिए यतिवृषभ आचार्य ने यथार्थ से कहा भी है-

जो ण पमाण-णयेहिं णिक्खेवेणं णिरक्खदे अत्थं।

तस्साजुत्तं जुत्तं जुत्तमजुत्तं च पडिहादि।।(82) (ति.प., प्रथम खण्ड)

जो नय और प्रमाण तथा निक्षेप से अर्थ का निरीक्षण नहीं करता है, उसको अयुक्त पदार्थ युक्त और युक्त पदार्थ अयुक्त ही प्रतीत होता है।

नाम निक्षेप का लक्षण

या निमित्तान्तरं किञ्चिदनपेक्ष्य विधीयते।

द्रव्यस्य कस्यचित्संज्ञा तन्नाम परिकीर्तितम्।।(10) (त.सा., पृ.4)

जाति, गुण क्रिया आदि किसी अन्य निमित्तकी अपेक्षा न करके किसी द्रव्य की जो संज्ञा रखी जाती है वह 'नाम निक्षेप' कहा गया है।

स्थापना निक्षेप का लक्षण

सोऽयमित्यक्षकाष्ठादेः सम्बन्धेनान्यवस्तुनि।

यद्वयवस्थापनामात्रं स्थापना साभिधीयते।।(11)

पासा तथा काष्ठ आदि के सम्बन्ध से 'यह वह है' इस प्रकार अन्य वस्तु में जो किसी अन्य वस्तु की व्यवस्था की जाती है वह 'स्थापना निक्षेप' कहलाता है।

किसी में किसी अन्य की कल्पना करने को स्थापना कहते हैं। इसके दो भेद है-(1) तदाकार स्थापना और (2) अतदाकार स्थापना। जैसा आकार है उसमें उसी आकार वाले की कल्पना करना तदाकार स्थापना है, जैसे-पार्श्वनाथ की प्रतिमा में पार्श्वनाथ भगवान् की स्थापना करना और भिन्न आकार वाले में भिन्न आकार वाले की कल्पना करना अतदाकार स्थापना है, जैसे-शतरंज की गोटों में बजीर, बादशाह आदि की कल्पना करना।

द्रव्य निक्षेप का लक्षण

भाविनः परिणामस्य यत्प्राप्तिं प्रति कस्यचित्।

स्याद्गृहीताभिमुख्यं हि तद् द्रव्यं ब्रुवते जिनाः।।(12)

किसी द्रव्य को, आगे होने वाली पर्याय की अपेक्षा वर्तमान में ग्रहण करना द्रव्य निक्षेप है, ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं।

द्रव्य की जो पर्याय पहले हो चुकी हैं अथवा आगे होने वाली है उसकी अपेक्षा द्रव्य का ग्रहण करना अर्थात् उसे भूतपर्याय रूप अथवा भविष्यत् पर्यायरूप वर्तमान में ग्रहण करना सो द्रव्य निक्षेप है।

भावनिक्षेप का लक्षण

वर्तमानेन यत्रेन पर्यायेणोपलक्षितम्।

द्रव्यं भवति भावं तं वदन्ति जिनपुङ्गवाः।।(13)

वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य को जिनेन्द्र भगवान् भाव निक्षेप कहते हैं। जो पदार्थ वर्तमान में जिस पर्याय रूप हैं, उसे उसी प्रकार कहना भाव निक्षेप हैं।

सम्यग्दर्शन आदि तथा तत्त्वों के जानने के उपाय

प्रमाणनयैरधिगमः। (6)

अधिगम Adhigama is knowledge that is derived form tuition external sources, e.g. precept and scriptures. It is attained by (means of)-प्रमाण एवं नय प्रमाण Authority by means of which we test direct or indirect right knowledge of the self and the non self in all their aspects.

नय a stand-point which gives partial knowledge of a thing in some particular aspect of it.

प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है।

रत्नत्रय, जीवादि द्रव्य, सप्त तत्त्व, नव पदार्थ आदि का ज्ञान प्रमाण और नयों से होता है।

पदार्थ का सम्पूर्ण परिज्ञान जिससे होता है उसे प्रमाण कहते हैं। जिससे पदार्थ का आंशिक ज्ञान प्राप्त होता है उसे नय कहते हैं। नय एवं प्रमाण का वर्णन तत्त्वार्थ सार में निम्न प्रकार किया गया है-

तत्त्वार्थाः सर्व एवैते सम्यग्बोधप्रसिद्धये।

प्रमाणेन प्रमीयन्ते नीयन्ते च नयैस्तथा।। (14 तत्त्वार्थसार पृ.5)

ये सभी तत्त्वार्थ सम्यग्ज्ञान की प्रसिद्धि के लिए प्रमाण के द्वारा प्रमित होते हैं और नयों के द्वारा नीत होते हैं अर्थात् प्रमाण और नयों के द्वारा जाने जाते हैं।

प्रमाण का लक्षण और उसके भेद

सम्यग्ज्ञानात्मकं तत्र प्रमाणमुपवर्णितम्।
तत्परोक्षं भवत्येकं प्रत्यक्षमपरं पुनः।।(15)

उन प्रमाण और नयों में से प्रमाण को सम्यग्ज्ञान रूप कहा है अर्थात् समीचीन ज्ञान को 'प्रमाण' कहते हैं। उसके दो भेद है-एक परोक्ष प्रमाण और दूसरा प्रत्यक्ष प्रमाण। 'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्'-जिसके द्वारा जाना जावे उसे 'प्रमाण' कहते हैं; इस व्युत्पत्ति को आधार मानकर कितने ही दर्शनकार इन्द्रियों के तथा पदार्थों के साथ होने वाले उनके सन्निकर्ष को प्रमाण मानते हैं परन्तु जैनदर्शन में जानने का मूल साधन होने के कारण ज्ञान को ही प्रमाण माना गया है। इसके अभाव में इन्द्रियाँ और सन्निकर्ष अपना कार्य करने में असमर्थ रहते हैं।

परोक्ष प्रमाण का लक्षण

समुपात्तानुपात्तस्य प्राधान्येन परस्य यत्।
पदार्थानां परिज्ञानं तत्परोक्षमुदाहृतम्।।(16)

गृहीत अथवा अगृहीत पर की प्रधानता से जो पदार्थों का ज्ञान होता है उसे परोक्ष प्रमाण कहा गया है। जो ज्ञान पर की प्रधानता से होता है उसे 'परोक्ष प्रमाण' कहते है। पर के दो भेद है (1) समुपात्त और (2) अनुपात्त। जो प्रकति से ही गृहीत है उसे समुपात्त कहते है, जैसे-स्पर्शनादि इन्द्रियाँ तथा जो प्रकृति से गृहीत न होकर पृथक् रहता है उसे अनुपात्त कहते हैं, जैसे-प्रकाश आदि। इस तरह इन्द्रियादिक गृहीत कारणों से और प्रकाश आदि अगृहीत कारणों से जो ज्ञान होता है वह 'परोक्ष' प्रमाण कहलाता है।

प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण

इन्द्रियानिन्द्रियापेक्षामुक्तमव्यभिचारि च।
साकारग्रहणं यत्यात्तत्प्रत्यक्षं प्रचक्ष्यते।।(17)

इन्द्रियाँ और मन की अपेक्षा से मुक्त तथा दोषों से रहित पदार्थ का जो सविकल्पज्ञान होता है उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

साकार और अनाकार के भेद से पदार्थ का ग्रहण दो प्रकार का होता है जिसमें घट-पटादिका आकार प्रतिफलित होता है उसे साकार ग्रहण कहते हैं और जिसमें किसी वस्तु विशेष का आकार प्रतिफलित न होकर सामान्य ग्रहण होता है उसे

अनाकार ग्रहण कहते हैं। साकार ग्रहण को ज्ञान और अनाकार ग्रहण को दर्शन कहते हैं। जिस ज्ञान में इन्द्रिय और मन की सहायता आवश्यक नहीं होती, जो विशद रूप होने के कारण दोष रहित होता है तथा जिसमें पदार्थों के आकार विशेष रूप से प्रतिभाषित होते हैं, उसे प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः। (7)

Adhigama is attaind by (considering a principle, or any substance with reference to its निर्देश (Description, Definition), स्वामित्व (Possession, Inherence), साधन (Cause), अधिकरण (Place), स्थिति (Duration) and विधान (Division).

निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है।

वस्तु स्वरूप का अन्वेषण, गवेषण, शोध एवं बोध करने के लिए इस सूत्र में वैज्ञानिक विभिन्न प्रणालियों का निर्देशन किया गया है। इस सूत्र में वस्तु स्वरूप को जानने के लिए जिस प्रणाली का निर्देशन किया गया है इसी प्रणाली का प्रयोग जैन धर्म के ज्ञान कोष स्वरूप षट्खण्ड आगम एवं कषाय पाहुड़ में प्रायोगिक रूप में विस्तार से किया गया है।

विचित्र-मानव!

(धर्म-सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि आदि में विचित्रता!)

(चाल : तुम दिल की धड़कन....., छोटी-छोटी गैया....., सायोनारा.....)

विचित्र हैं कर्म विचित्र हैं भाव...विचित्र परिणति विचित्र हैं काम...
हिताहित विवेक शून्य होते ये काम...मनमानी स्वार्थपूर्ण होते ये काम...(स्थायी)...
उपदेशक अन्य के न स्वयं करे ज्ञान...अन्य अच्छे बने कहने वाले भी दुर्जन...
निर्दोषी की हत्या करके बनते धार्मिक...स्व-आराध्य (की) संतुष्टि हेतु बनते अधार्मिक...
अधार्मिक/(मिथ्यादृष्टि) सूक्ष्म (एकेन्द्रियादि) जीवों की रक्षा हेतु...
प्रासुक पानी पीते जमीकंद न खाते...
पिच्छी धारण करते पैदल भी चलते...पंथादि भिन्न धार्मिक (जन) से द्वेष करते...(1)...

धार्मिक रिक्त कभी कोई धर्म न होता...धार्मिक से द्वेष करने वाला अधार्मिक होता...
पूजा-पाठ-मंदिर-तीर्थ-पर्व-उत्सव...बाह्य साधन धर्म के न धर्म यथार्थ...

आराधक को प्रसन्न अन्य को प्रभावित करते...स्वयं को प्रशांत व पवित्र न करते...
स्व-शुद्धात्मा को न जाने-माने न पाते...तन-मन-धन-मानादि को ही स्व/(मैं) जानते...(2)...

सत्य-समता-शांति ही परम धर्म-कर्म...ज्ञान-विज्ञान-नीति-नियम व कानून...
इसे न जाने-माने व नहीं पालते...अज्ञान-मोह-स्वार्थवश काम करते...

पंथादि भिन्नता से हर संप्रदाय के जन...परस्पर वैरत्व से स्व को माने धार्मिक...
स्व पंथ/(मत, भाव) को ही सच्चा-अच्छा-हितकर बताते...
किन्तु स्वयं सच्चे-अच्छे (हितकर) नहीं बनते...(3)...

कठोरता से भी रूढ़ि-परम्परा पालते...वर्चस्व-दिखावा हेतु आडम्बर करते...
सत्य-तथ्य-शिक्षा से रहित होते...अनुशासन-आत्मविशुद्धि नहीं करते...

उच्च विचार पावन भावना के बिना...दया दान सेवा परोपकार के बिना...
सत्ता-संपत्ति-प्रसिद्धि से माने स्व को महान्...भले सत्तादि हो अन्याय से जायमान...(4)...

भले बने अन्य के शोषण से सत्तादिवान्...शोषित को नीच माने स्वयं को महान्...
श्रमिक कृषक गरीब से होते पोषित...तथापि उन्हें नीच माने स्वयं को श्रेष्ठ...

आधुनिक सभ्य तो स्वयं को जताते...नीच बर्बर सम भाव-काम करते...
सरल-सहज-उच्च जो जीवन जीते...उन्हें तुच्छ-गँवार-पिछड़ा मानते...(5)...

वनस्पति से कीट-पतंग-पशु के कारण...मानव जीवित है बनता भौतिक सम्पन्न...
तथापि उन्हें तुच्छ माने व करे शोषण...स्वयं तो शोषक किन्तु माने मैं हूँ पोषक...

बिन प्रशंसनीय भाव-काम चाहे प्रशंसा...अन्य से प्रशंसा चाहे न करे अन्य की प्रशंसा...
अन्य की प्रगति प्रंशसा से भी जलते...जलते हुए भी स्वयं को शीतल जताते...(6)...

आध्यात्मिक समता युक्त जो महान् जन...इन विचित्रताओं से परे करते प्रयाण...
/(उन्हें तुच्छ मानते हैं ये नीच जन)...
वे ही परम विकास करते पाते सुख...'कनकनन्दी' का लक्ष्य है आत्मिक सुख...(7)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 24.02.2016, रात्रि 8.52

पशु-पक्षी-देव-नारकी-नर-नारी भी होते है जैन (सम्यग्दृष्टि आदि)

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की धड़कन.....)

कितना पावन कितना उदार है कितना व्यापक जैन धर्म प्यारा।
परम सर्वोदय परम अन्त्योदय आध्यात्मिक वैश्विक धर्म न्यारा।।

जैन धर्म को पाल सकते है पशु-पक्षी देव-नारकी नर-नारी।
जो मिथ्यात्व अनंतानुबंधी के उपशमादि से बनते सुदृष्टि प्राणी।। (1)

समवशरण की बारह सभा में जो होते हैं वे सभी होते सुदृष्टि।
द्वादश कोठे में तो केवल तिर्यंच ही होते सिंह व्याघ्र सर्प नेवला आदि।।

चारण ऋद्धिधारी मुनि के उपदेश से सिंह भी बन गया था सुदृष्टि।
वही सिंह आध्यात्मिक विकास द्वारा बना है तीर्थंकर सन्मति।। (2)

तीर्थंकर पारसनाथ भी पूर्व भव में थे सम्यग्दृष्टि हाथी।
जटायु पक्षी भी था सम्यग्दृष्टि क्षायिक सम्यग्दृष्टि श्रेणिक अभी (भी) नारकी।।

असंख्य देव होते हैं सम्यग्दृष्टि कुछ तो होते क्षायिक सम्यग्दृष्टि।
ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शुद्र नर-नारी भी होते यथायोग्य (तीनों प्रकार) सुदृष्टि।। (3)

चारों गति में होते सुदृष्टि जिसे कहते प्राथमिक जैन धर्मी।
नारकी देवों में होते प्राथमिक जैन तिर्यंच में होते व्रती/(श्रावक) भी।।

ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य तो हो सकते है पाँचों-परमेष्ठी भी।
शुद्ध भी होते हैं प्राथमिक जैन से लेकर व्रती श्रावक भी।। (4)

नारी भी हो सकती है प्राथमिक जैन से लेकर आर्यिका तक भी।
सुद्रव्य क्षेत्रकाल भावानुसार आत्मविशुद्धि से बनते जैन धर्मी।।

जैन धर्म तो आत्म स्वभाव है इसे न भौतिकता से प्राप्त करना संभव।
जैन धर्म है आत्म विजयी धर्म जो विजय करे राग द्वेष मोहादि पर।। (5)

आध्यात्मिक क्रम विकास द्वारा भव्य जीव ही बनते भगवान्।
भगवान् बनने हेतु 'कनकनन्दी' बना है आध्यात्मिक श्रमण।। (6)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 26.02.2016, रात्रि 8.32

संदर्भ-

समवशरणगत बारह कोठों में बैठने वाले जीवों का विभाग

चेट्ठंति बारस-गणा, कोट्ठाणब्भंतरेसु पुव्वादी।

पुह पुह पदाहिणेणं गणाण साहेमि विण्णासा।। (865)

इन कोठों के भीतर पूर्वादि प्रदक्षिण-क्रम पृथक्-पृथक् बारह गण बैठते हैं। इन गणों के विन्यास का कथन आगे करता हूँ।

अक्खीण-महाणसिया, सप्पी-खीरामियासव-रसाओ।

गणहर-देव-प्पमुहा, कोट्ठे पढमम्मि चेट्ठंति।। (866)

इन बारह कोठों में से प्रथम कोठे में अक्षीणमहानसिक ऋद्धि तथा सर्पिरास्रव, क्षीरास्रव एवं अमृतास्रवरूप रस-ऋद्धियों के धारक गणधर देवप्रमुख बैठा करते हैं।

बिदियम्मि फलिह-भित्ती-अंतरिदे कप्पवासि-देवीओ।

तदियम्मि अज्जियाओ, सावइयाओ विणीदाओ।। (867)

स्फटिकमणिमयी दीवालों से व्यवहित दूसरे कोठे में कल्पवासिनी देवियाँ एवं तीसरे कोठे में अतिशय विनम्र आर्यिकाएँ और श्राविकाएँ बैठती हैं।

तुरिये जोइसियाणं, देवीओ परम-भक्ति-मंतीओ।

पंचमए विणिदाओ, विंतर-देवाण देवीओ।। (868)

चतुर्थ कोठे में परम-भक्ति से संयुक्त ज्योतिषी देवों की देवियाँ और पाँचवें कोठे में व्यंतर देवों की विनीत देवियाँ बैठा करती हैं।

छट्ठम्मि जिणवरच्चण-कुसलाओ भवणवासि-देवीओ।

छट्ठए जिण-भत्ता, दस-भेदा भावणा देवा।। (869)

छठे कोठे में जिनेन्द्र देव के अर्चन में कुशल भवनवासिनी देवियाँ और सातवें कोठे में दस प्रकार के जिनभक्त भवनवासी देव बैठते हैं।

अट्ठमए अट्ठविहा, वेंतरदेवा य किण्णर-प्पहुदी।

णवमे ससि-रवि-पहुदी, जोइसिया जिण-णिविट्ठ-मणा।। (870)

आठवें कोठे में किन्नरादिक आठ प्रकार के व्यंतरदेव और नवम कोठे में जिनेन्द्र-देव में मन को निविष्ट करने वाले चन्द्र-सूर्यादिक ज्योतिषी देव बैठते हैं।

सोहम्मादी अच्चुद-कप्पंता देव-रायणो दसमे।

एक्करसे चक्कहरा, मंडलिया पत्थिवा मणुवा।। (871)

दसवें कोठे में सौधर्म स्वर्ग से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यंत के देव एवं उनके इन्द्र तथा ग्यारहवें कोठे में चक्रवर्ती, माण्डलिक राजा एवं अन्य मनुष्य बैठते हैं।

बारसमम्मि य तिरिया, करि-केसरि-वग्ध-हरिण-पहुदीओ।
मोत्तूण पुव्व-वेरं, सत्तू वि सुमित्त-भाव-जुदा।। (872)

बारहवें कोठे में हाथी, सिंह, व्याघ्र और हरिणादिक तिर्यंच जीव बैठते हैं। इनमें पूर्व वैर को छोड़कर शत्रु भी उत्तम मित्र भाव से संयुक्त होते हैं।

शुद्ध भाव वालों को विपरीत ज्ञानी मानते हैं दुर्जन! क्यों?

(चाल : आत्मशक्ति....., तुम दिल की.....)

मौलिक शुद्ध चिन्तन आचरण को नहीं जानते अधिकांश जन।
स्वयं तो होते हैं विपरीत ज्ञानी शुद्ध भावी को मानते दुर्जन।। (ध्रुव)

जो कुछ थोड़ा देखे-सुने उसे ही मानते हैं परम सत्य।
परम सत्य व आत्म तत्त्व को वे मानते हैं सब असत्य।।

यथा जन्मांध न देखता सूर्य को तो क्या सूर्य हो गया असत्य।
तथाहि अज्ञानी सत्य न जानते (तो) क्या सत्य हो जावे असत्य।। (1)

इन्द्रिय-मन में न अनंत शक्ति तथाहि यंत्रों में न अनंत शक्ति।
सत्य में होते हैं अनंत गुण/(आयाम, पहलू) अतः इन्द्रियादि न जाने पूर्ण सत्य।।

अधिकांश जीव न जानते स्वयं/(मैं) को तथाहि आकाश-काल व विश्व।
जन्म-मरण सुख-दुःख के कारण धर्म-अधर्म व पुण्य-पाप।। (2)

नहीं जानते हैं आत्मा-परमात्मा, अणु से लेकर लोक-अलोक।
भाग्य-पुरुषार्थ-निमित्त-उपादान, भव्य-अभव्य व भगवान्।।

स्व के तन-मन-इन्द्रियों के स्वरूप को भी जब नहीं जानते।
तब वे कैसे जानेंगे अमूर्तिक, स्व अनंत गुणधारी आत्मा को।। (3)

भक्ष्य-अभक्ष्य हितकर-अहितकर भोजन-पेय को भी न जानते।
नीति-अनीति को भी न जानते (तो) कैसे अमूर्तिक आत्मा जानेंगे।।

परिवार-समाज-संघ-संगठन के सदस्यों से (जो) दुर्व्यवहार करते।
वे क्या धर्म पालन करेंगे व क्या विश्व हित हेतु काम करेंगे।। (4)

उठना-बैठना-खाना-पीना-सोना-जागना जो सही न करते।
वे क्या जानेंगे आत्मविकास कैसे आत्म अनुसंधान करेंगे।।

अव्यवस्थित जिनकी दैनिक चर्या, अस्त-व्यस्त-संत्रस्त जीवन।
वे क्या जानेंगे व मानेंगे आध्यात्मिक शांतिमय/(समतामय) जीवन।। (5)

धर्म तो आत्म-स्वभाव है वह तो अनंत गुणों से सहित।
रीति-रिवाज व पर्व की सीमा में कैसे पायेंगे धर्म व सत्य।।

इसलिए जो आध्यात्मिक जन परम सत्य के अनुसार सोचते।
तदनुकूल करते व कहते उन्हें ये कुज्ञानी असत्य मानते/(कहते)।। (6)

इसलिए तो तीर्थंकर मुनि तक को ऐसे जीव कष्ट तक देते हैं।
ऐसे ही यथायोग्य अन्य महापुरुषों को भी कष्ट देते है।।

तथापि महान् पुरुष सत्य के बल पर ही विजय को प्राप्त करते हैं।
कनकनन्दी भी ऐसे महान् पुरुष को आदर्श रूप में मानते हैं।। (7)

प्रकाश यथा अंधकार से नहीं होता भयभीत व परास्त भी।
महान् पुरुष भी विपरीत ज्ञानी से नहीं होते भयभीत परास्त भी।। (8)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 07.02.2016, रात्रि 10.15 व 2.00

अधिक ज्ञानी साधु व कम ज्ञानी साधु परस्पर निन्दा न करे

(अधिक ज्ञानी साधु कम ज्ञानी साधु की निन्दा न करे तथा कम ज्ञानी साधु अधिक ज्ञानी की निन्दा न करे)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : तुम दिल की....., सायोनारा....., छोटी-छोटी गैया.....)

निन्दा न करे कोई किसी की...अधिक ज्ञानी भी कम ज्ञानी की...
निन्दा तो अधार्मिक काम है...निन्दा प्रवृत्ति न होती साधु की...

निन्दा में होते हैं राग-द्वेष-मोह...ईर्ष्या-घृणा रूपी असमता भाव...
ये सब भाव हैं अधार्मिक भाव...साधु के योग्य न होते ये भाव...(1)...

समता साधक होते हैं श्रमण...जीवन-मरण में जो रखते साम्य...
लाभ-अलाभ संयोग-वियोग में...शत्रु-मित्र व सुख-दुःख में...

समता हेतु ही त्याग-तपस्या...व्रत-नियम व ध्यान-अध्ययन...
परीषह जय व उपसर्ग सहन...समता हेतु ही सभी हैं साधन...(2)...

समता बिना तप-त्याग आदि से...नहीं होते संवर व निर्जरण...
आत्म-विशुद्धि भी नहीं होती है...नहीं मिल सकता है परिनिर्वाण...

अधिक ज्ञानी जो होते हैं श्रमण...अधिक साम्य होता तदनुसारेण...
वे न कर सकते निन्दा के परिणाम...उच्च परिणाम से होते ज्ञानी श्रमण...(3)...

अतः वे न निन्दा करते अन्य की...हीनाधिक ज्ञानी अन्य साधु की...
वे तो स्व-निन्दा-गर्हादि करके...आत्म विशुद्धि हेतु तत्पर रहते...

जो श्रमण होते हैं न्यून/(कम) ज्ञानी...वे तो ज्ञान को बढ़ाना चाहते...
इसीलिए वे ज्ञान व ज्ञानी की...विनय-बहुमान-प्रशंसा करते...(4)...

उपगूहन स्थितिकरण अंग युक्त...वात्सल्य सहित प्रभावना करते...
निन्दा से ये अंग भी नष्ट होते...नीच गोत्र आदि पाप भी बंधते...

निन्दा से वाद-विवाद-कलह होते...वैर-विरोध व फूट भी होते...
संघ-समाज का अपमान भी होता...शालीनता-मर्यादा का भंग भी होता...(5)...

अन्य लोग भी इसका लाभ उठाते...अपमान व निन्दा अनादर करते...
विभिन्न प्रकार भी क्षति पहुँचाते...अतः 'कनक' निन्दा से दूर रहते...(6)...

संदर्भ-

(बहुशास्त्रज्ञों को कम शास्त्रज्ञ साधुओं का दोष ग्रहण नहीं करना चाहिए और न अल्पज्ञ साधुओं को बहुशास्त्रज्ञों का दोष ग्रहण करना चाहिए। ऐसा ही हर व्यक्तियों के लिए जान लेना चाहिए, क्योंकि राग-द्वेष-छिद्रान्वेषण-निन्दा करना अधर्म/पाप है।)

-प्रवचनसार

आत्मानुभवी परम पूज्य आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के चरणों में सुनीति की हृदयाभिव्यक्ति

जय हो गुरुवर...जय हो गुरुवर...
अभिमान से स्वाभिमान की ओर
स्वाभिमान से अहम् (मैं) की ओर
अहम् से शुद्धोऽहम् की ओर स्वयं बढ़ने और अन्यों को बढ़ाने वाले अनुभवी

ज्ञानी-ध्यानी मेरे पूज्यश्री गुरुवर आपके पावन श्री चरणों में सुनीति का त्रय भक्ति योगों से नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...

सर्व प्रकार के संसार के लंद-फंदों से दूर रहने वाले और आत्म अनुभवों से कर्मों को आत्मा से मुक्ति दिलाने वाले आगमनिष्ट प्रातः स्मरणीय गुरुवर के श्रीचरणों में मेरा वंदन...अभिनंदन...

अपनी आत्मा के प्रति सच्ची निष्ठा और अपने संयम के प्रति सच्ची श्रद्धा रखने वाले सुवर्ण से भी ज्यादा सच्चे गुरुवर के श्रीचरणों में द्वय हस्त कमलों से पूर्ण श्रद्धा से बारम्बार नमोऽस्तु

जिनकी मुस्कान फूलों-सी तथा जिनका मुख उगते सूर्य-सा है जिनको पाकर धरती पवित्र हो जाती है ऐसे पवित्र गुरुवर के श्री चरणकमल में प्रणाम..

नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...नमोऽस्तु...

गुरुवर आपके प्रति मेरी भक्ति तो अपार है पर मेरे पास शब्दों का ज्ञान सीमित है इसलिए आप थोड़े में ज्यादा समझना

गुरुदेव आपके जैसा इस संसार में एक व्यक्ति है वो कौन है...नहीं पता ना आपको मुझे पता है...मैं बताऊँ...वो आप खुद हो जब हमको उपमा करने योग्य कोई साधन ना मिले तब हम कहते है उसके जैसा वो ही है और कोई नहीं ऐसे ही आपके जैसे भी आप ही हो और कोई भी नहीं हो सकता क्योंकि आपकी उपमा किसी और से करे उसके लिए कोई आपके जैसा होना तो चाहिए पर है ही नहीं इस विश्व में। जहाँ सारे संसार के लोग स्व को भूलकर इस दुनिया रूपी रंगमंच पर व्यर्थ के नाटक किये जा रहे है वही पर आप सारी दुनिया के व्यर्थ के नाटक को भूलकर, छोड़कर आत्मा रूपी रंगमंच से स्व को प्राप्त किये जा रहे है धन्य हैं गुरुदेव आप धन्य है।

मेरे स्मृति पटल पर तो आप टंकोत्कीर्ण जैसे अंकित हो चुके हो प्रातःकाल मैं आपकी तीन परिक्रमा करके तीन बार आपके श्रीचरणों में नमोऽस्तु करके आपके जैसे बनने की भावना करती हूँ मेरे भाव आपके श्रीचरणों को छूकर पावन हो जाते है गुरुवर।

मेरी इस बात को सुनकर लोग मुझे पागल समझ सकते है कि जो मेरे पास नहीं उसकी परिक्रमा व उनके चरण छूना ये कैसे हो सकता है पर होता है गुरुदेव रोज सुबह आप मुझे मेरे पास मिलते है और मैं आपके चरण छूकर आशीर्वाद लेती हूँ आप मानेंगे ना मेरी इस बात को।

गुरुदेव मैंने तीन दिन से लगातार माँगीतुंगी जी सिद्ध क्षेत्र की वंदना की और मैंने क्या किया पता है आपको मैंने हर मंदिर में आपकी व पूरे संघ वालों की तरफ से वंदना की और भगवान जी से बार-बार यही प्रार्थना की कि मेरे कनकनन्दी जी गुरुदेव की आत्मविशुद्धि दिन-रात बढ़ती ही रहे, उनका अनुभव ज्ञान वृद्धिगत हो, मेरी सारी आयु गुरुदेव को मिल जाये और गुरुदेव इस धरती पर रहकर सबका कल्याण करे और आपकी यशकीर्ति हर एक कोने में फैले। मैं चाहकर भी कभी आपके जैसी नहीं बन सकती हूँ इसलिये मैं चाहती हूँ की मेरी सारी बची हुई उम्र आपको मिल जाये। मुझे पता है अटल श्रद्धान है कि मेरी उम्र का आपके पास महा सदुपयोग होगा आप हर पल बहुत कर्मों को क्षय कर दोगे इसलिये मैं अपनी सारी उम्र आपको डोनेट करना चाहती हूँ।

गुरुदेव मेरे शरीर पर दीक्षा के संस्कार किसी और ने किये है पर मेरी आत्मा पर आत्म कल्याण के संस्कार केवल आपने किये है मेरी आत्मा तक आपने मुझे पहुँचाया है, आपने मेरे इस चेतन को जगाया है, आपने मुझे मैं से मिलाया है इसलिये सच्चे अर्थों में आप ही मेरे गुरु है। मेरे नयनों में अश्रु आ रहे है कैसे चुकायेंगे आपका इतना बड़ा कर्ज? आखिर कैसे? कुछ युक्ति आप ही बताइये मुझे तो नहीं पता। I love you so much gurudev इस बात को सारी दुनिया गलत सोचे या सही इस बात से मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता मैंने अनादि काल से मिथ्यात्व से व मिथ्यात्व प्रेमियों से बहुत राग किया पर इन सबसे मुझे क्या मिला अपार दुःखमय संसार फिर इससे विपरीत जब मुझे अब सच्चे गुरु मिले है फिर उनसे प्रेम क्यूँ ना करूँ। मैं तो करूँगी एक बार नहीं, सौ बार नहीं बार-बार करूँगी।

मुझे आपसे प्रशस्त राग है गुरुदेव और वो भी अपार है और मुझे पता है कि ऐसे निस्पृह गुरु से राग मुझे अवश्य वीतरागी बनायेगा इसलिये Love you so much gurudev आप मुझे डाँटेंगे ना गुरुदेव वा ठीक है डाँट लेना बाद में पर मैं क्या करूँ गुरुदेव मुझे पता है जो आपसे प्यार नहीं करेगा उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता है और आप इतने सहज हो गुरुदेव की सबको आपसे निश्छल प्रेम हो जाता है। इसलिये सब लोग आपको अपना गुरु मानते है।

आगम में क्या लिखा? क्यूँ लिखा है? कैसे लिखा है इतना सारा में नहीं जानती हूँ पर आपको देखकर सब समझ में आ जाता है कि आगम में क्या लिखा होगा। आगम में लिखा होगा जितनी निश्छलता रखेंगे उतना ऊपर उठेंगे, जितनी

निस्पृहता रखेंगे उतना वैभव प्राप्त होगा जितना पर से हटेंगे उतना स्व में जायेंगे। सारी दुनिया पागल है गुरुवर! सब लोग ये, वो सब कुछ पता नहीं क्या-क्या प्राप्त करना चाहते है पर उनको थोड़ा ही प्राप्त होता है और आप कितने होशियार हो गुरुदेव सब कुछ छोड़कर बैठ गये फिर भी सारी दुनिया आपके ही पीछे आ रही है। जो दूसरों के पीछे भागेंगे उनको तो कुछ नहीं मिलेगा मेरा मतलब ख्याति, पूजा, लाभ आदि से है। पर जो आपके पीछे रहेंगे उनको सब कुछ प्राप्त हो जायेगा।

एक भी दिन ऐसा नहीं जाता गुरुदेव जब आपकी चर्चा ना होती हो जब आपका नाम ना लेते है रोज आपको याद करते है।

अंत में यही कहूँगी...

कुंथुसागर जी के गुरुकुल में लिया एडमिशन
संयम के सब्जेक्ट का किया आपने सलेक्शन
फिर चलाये आपने आत्मखोज के नये-नये मिशन
आत्मशुद्धि के लिए किया कर्मों का आत्मा से संश्लेशन
जिससे आपके पास होता रहा नये-नये शुभ भावों का एडीशन
तब आपने किया निस्पृहता और शांति का मल्टीफिकेशन
फिर निरन्तर होता रहा आत्मानुभव की ओर आपका प्रमोशन
गुरुदेव आपकी इस सफलता पर बारम्बार कांग्रेजुलेशन-3

नमोऽस्तु गुरुदेव-मेरे द्वारा लिखने में गलती हो गयी हो तो आप मुझे क्षमा करना।

आर्यिका
सुनीतिमती
14.02.2016
माँगीतुंगी जी सिद्ध क्षेत्र

सबको नमोऽस्तु वंदामि... Always Smile & Happy

अभौतिक मेरा लक्ष्य : अतः अन्य से अप्रत्यक्ष

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया....., इक परदेशी.....)

मुझे कोई जाने या न जाने...'मैं' तो स्वयं को ही जानूँगा...
मुझे कोई माने या न माने...'मैं' तो स्वयं को ही मानूँगा...(स्थायी)...

'मैं' तो अमूर्तिक हूँ मुझे कोई...कैसे चर्मचक्षु से देखेगा...
'मैं' हूँ भार से रहित मुझे कोई...कैसे तुलायंत्र से तोलेगा...

अभौतिक गुणगणधारी हूँ 'मैं'...सत्ता व संपत्ति से कैसे तोलेगा...
नाम कर्म रूप यश कीर्ति परे हूँ...मेरा यशोगान कैसे कौन करेगा...(1)...

भौतिकता परे ही मेरा लक्ष्य है...भौतिकवादी क्या मुझे जानेंगे?...
चक्षु से विहीन ही जो होते हैं...वे सूर्य को भी कैसे देखेंगे?...

चक्षु कितनी भी हो दृष्टि सम्पन्न...अनंत आकाश को न देख पाती...
जो संकीर्ण भाव व लक्ष्य पूर्ण...वे मुझे कैसे सही जान पायेंगे...(2)...

मलिन या टूटा दर्पण में यथा...वस्तु का प्रतिबिंब सही न आता...
दूषित या क्षुभित चित्त वाले...मेरे स्वरूप को सही जान न पाते...

अन्य से मेरा लक्ष्य है न्यारा...तथापि मेरा लक्ष्य है मुझे प्यारा...
सच्चिदानंदमय आत्मा ही प्यारा...'कनकनन्दी' चाहे स्वरूप सारा...(3)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 18.02.2016, रात्रि 8.15
(श्रमणी आर्यिका सुनीतिमती के पत्र से प्रभावित होकर यह कविता लिखी।)

आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव को मैंने जैसा सुना-समझा-पाया

-विजयलक्ष्मी जैन

आचार्यश्री कनकनन्दी गुरुदेव विश्वगुरु है। उनके भाव तो प्रत्येक प्राणी के विकास के है ही साथ ही उनके साहित्य के ज्ञान से देश-विदेश के लोग हों ऐसी भावना है। ज्ञान देने से बढ़ता है, यह प्राचीन मान्यता है। ज्ञान से स्वयं के विकास के साथ-साथ शिष्यों का भी उद्धार कर रहे हैं। गुरुदेव के साहित्य पर पी.एच.डी., एम.फिल. हो रही है। गुरुदेव भारत को प्राचीन भारत के ऋषि-मुनियों का, ज्ञान का केन्द्र, जहाँ विदेशी ज्ञान लेने आते थे, सरल व प्राज्ञ शिष्य थे ऐसे भारत को बनाना चाहते हैं। वह भारत की वर्तमान दशा को देखकर बहुत दुःखी हैं। क्योंकि भारत अभी वर्तमान में हर क्षेत्र में पिछड़ गया है। वह अपने आप को प्राचीन भारतीय मानते हैं। वास्तव में गुरुदेव में प्राचीन ऋषियों की तरह ज्ञान है, प्रज्ञा है, अनेक विधाओं का

ज्ञान है वर्तमान के आधुनिक विज्ञान से भी आगे जैन धर्म के सिद्धांतों को प्रतिपादित करके बता दिया है। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि भौतिक शास्त्रों, नियमों में बार-बार परिवर्तन होता है, परन्तु जैन सिद्धांतों में कोई परिवर्तन नहीं होता हैं, यह अनादि काल से चले आ रहे हैं। उनको कोई खण्डन नहीं कर सकता। बड़े-बड़े शास्त्रों को कोई पढ़ता नहीं, जानता नहीं, समझता नहीं अतः रहस्यों का उद्घाटन भी नहीं कर सकता परन्तु आचार्यश्री कनकनन्दी ने आगम से सब सिद्धांत, क्रिया-प्रतिक्रिया, सापेक्ष सिद्धांत, चतुः आयाम सिद्धांत, जिनोम सिद्धांत आदि विज्ञान के अनेकों सिद्धांतों को सिद्ध करके बता दिया है कि जैन धर्म में इनका वर्णन कितना प्राचीन है। गुरुदेव 'जैना' (अमरीका) 'पीस नेस्ट' संस्था के सदस्य है जिसमें भारत के तीन लोग ही चयनित है।

गुरुदेव किंगमेकर है। गुरु चाणक्य ने चंद्रगुप्त को बनाया, महात्मा गाँधी को रायचन्द्र जी ने बनाया परन्तु गुरुदेव किंग का अर्थ आत्मा को परमात्मा बनाने में लगे है। गणधर की तरह स्वयं प्रकाशित (ज्ञानवान) होकर सबको प्रकाश (ज्ञान) देना चाहते हैं। सब साधु सबके दोष नहीं देख पाते न कह पाते उसके लिए भी आगम चक्षु चाहिए। हम भारतीयों में क्या कमी हैं, यह देखकर गुरुदेव को पीड़ा है व कमियों को दूर करना चाहते हैं। तरण-तारण गुरु हम पर उपकार कर रहे हैं। आगम में अज्ञानी जीव को मूढ़, दुष्ट, पापी आदि से संबोधन किया गया है क्योंकि जब तक हम ''मैं'' का ज्ञान न कर ले तब तक अज्ञानी ही हैं। गुरु ही हमारी छोटी-सी गलती को बड़ी करके दिखा सकते हैं क्योंकि उनके पास आगम रूपी माइक्रोस्कोप है। जिससे देखकर डॉ. की तरह कड़वी परन्तु उपकारी औषधि से हमारा कल्याण करते हैं।

आगम में जैसा स्वरूप गुरु का बताया गया है वैसा ही गुरुदेव का है। बिना बोले ही जिनकी क्रिया से आभा से ही मोक्षमार्ग की शिक्षा मिलती है। वे लौकिक गुरुओं से बिलकुल विपरीत है। गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करने वाले विरले गुरु हैं। बहुत सरल तरीके से उदाहरण द्वारा, व्यवहार में आते हैं ऐसे उदाहरण जिससे जल्दी समझ में आ जाता है, समझते हैं। भावों को विशुद्ध करने की शिक्षा बार-बार देते हैं। हम में भी अनंत शक्ति है हम भी अरहंत, सिद्ध बन सकते हैं इसका बोध कराते हैं।

गुरुदेव ने मुझे 'मैं' का बोध कराया। 'मैं' मेरे स्वयं की आत्मा ही है केवल हाड़-माँस का शरीर नाम वगैरह नहीं। मेरी आत्मा में अनंत शक्ति है परन्तु कर्मों के

आवरण के कारण ढ़की हुई है। जैसे-जैसे हमारे भावों में विशुद्धि बढ़ेगी हमारे कर्म हल्के होंगे व एक-एक गुण प्रकट होंगे। मैं अरहंत की तरह 18 दोषों से रहित हूँ 46 गुण मुझमें भी हैं, केवल 46 ही नहीं सिद्ध भगवान् की तरह मुख्य 8 गुण तथा उत्तर गुण अनंत हैं। आचार्य के 36 मूलगुण उपाध्याय के 25 व साधु के 28 मूलगुण पालन की क्षमता सब में है। 'मैं' क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित हूँ। राग-द्वेष, संकल्प-विकल्प आदि सभी विभावों से रहित हूँ। चक्रवर्ती आदि से भी अधिक अनंत शक्ति हम में है। गुरुदेव तो इसका सतत चिंतन, मनन करते हैं और स्वयं अनुभव भी करते हैं। हमें जब भी समय मिले इसका बार-बार चिंतन-मनन करना चाहिए। इसके लिए प्राथमिक क्रियाएँ पूजा, अभिषेक सब आवश्यक है, परन्तु सभी धार्मिक क्रियाएँ करते समय हमारा उद्देश्य भगवान् के गुण प्राप्त करने का होना चाहिए। गुरुदेव शिष्य के छोटे-से-छोटे गुण को भी प्रशंसा द्वारा बढ़ाते हैं। मेरे पर गुरुदेव ने यह उपकार किया है। मैंने एक भ्रूण हत्या पर लेख लिखा था, गुरुदेव के वात्सल्य भाव व आत्मीयता के कारण बताया गुरुदेव ने पढ़कर कहा बहुत अच्छा लिखा है तुम लिख सकती हो उनका प्रोत्साहन ही है जो मैं लेख, न्यूज, कविताएँ लिख पा रही हूँ व कुछ बोल पा रही हूँ। गुरुदेव के स्वाध्याय से प्राप्त ज्ञान से ही यह जाना कि निंदा से नीच गोत्र का बंध होता है, मनुष्य की पीठ के माँस भक्षण का दोष लगता है क्योंकि निंदा पीठ पीछे ही की जाती है, निंदा अनात्मा है, निंदा मानसिक संक्रमण है, आत्मा के पतन का कारण है। निंदा आत्महत्या है। मैं अपने आप को सम्यक्दृष्टि मानती थी परन्तु जब बात-बात में मेरे से निंदा हो गई, मुझे लगा उसके जो दोष है वह ही बता रही हूँ निंदा नहीं कर रही हूँ तब गुरुदेव ने मुझे टोका व पूछा तुम कैसे निंदा कर सकती हो। मैंने बताया गुरुदेव हम बात-बात में कब किसी की निंदा कर देते है पता ही नहीं चलता, हम संसारी लोगों के बातचीत का जरिया ही निंदा है एक-दूसरे के दोषों की गाथा कहना है गुरुदेव ने इस दोष के निवारण के लिए अनेक उदाहरण देकर बताया कि महिलाओं के गुप्तांग में रोग हो जाए तो सबको बताते हो या केवल डॉ. को। ठीक उसी तरह हमारे व दूसरे के दोष हो तो केवल गुरु को ही बताना चाहिए, सबको नहीं, दूसरों के दोष को देखकर भी बिना ईर्ष्या, घृणा, द्वेष के साम्य, समता से उसके गुण को ही देखना चाहिए। पाप को पाप रूप में ज्ञाता-दृष्टा की तरह जानना चाहिए। शांति-पाठ में ''दोष ढाकू सभी का'' रोज बोलते है परन्तु व्यवहार में दोष उजागर करूँ

सभी का ही करते हैं। गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान से अब मैं हमेशा सतर्क रहती हूँ कि कहीं किसी की निंदा न हो जाय। सबमें गुण देखने की ही कोशिश करती हूँ। गुण की प्रशंसा व प्रोत्साहन करने की भी कोशिश करती हूँ जिससे उस व्यक्ति में गुण बढ़ें। गुरुदेव हमेशा समता में रहते हैं। सारी उम्र भूखा रहना सरल है परन्तु समता में रहना कठिन है यह हम नहीं समझ पाते समता क्या है, कैसे रहना, यह पूरा अभी हम सीख नहीं पाये हैं। समता को साम्य समदृष्टि भी कहते हैं दोषी से भी घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, राग नहीं करना यह समता है। सब जीव मेरे समान हैं। इस वस्तु से मुझे कष्ट हो रहा है तो अन्य को सुख कैसे मिल सकता है। गुरुदेव किसी भी व्यक्ति में छोटा-सा अवगुण देख ले तो उसे डाँटते हैं, फटकारते हैं, उन्हें आभास हो जाता है कि इसका विकास हो सकता है, भव्य है। गुरु ही होते है जो मिथ्यादृष्टि को सम्यक्दृष्टि बना देते हैं। गुरुदेव बार-बार बताते हैं सर्वप्रथम आत्महित करो यदि शक्य हो तो परहित भी करो। गुरुदेव सूक्ष्मदृष्टि व दूरदृष्टि है। हम एक समय में एक कार्य भी सही नहीं कर सकते हैं, परन्तु गुरुदेव का चारों ओर ध्यान रहता है व पूर्ण रूप से, भले वह लिख रहे हो और हम उन्हें कुछ सुना रहे हैं तो हमारी गलती को तुरन्त पकड़ लेते हैं। गुरुदेव को कोई एक बार प्रश्न पूछ ले उसका संदर्भ न होने पर उस समय उत्तर नहीं भी देते हैं परन्तु संदर्भ आने पर तुरन्त बताते हैं कि तुमने यह प्रश्न पूछा था। उसका यह उत्तर है। मुझे तो आश्चर्य होता है कि गुरुदेव को यह सब याद कैसे रहता है जबकि प्रश्न पूछने वाला भूल जाता है। यह विषय इस पुस्तक में मैंने लिखा है, इस शास्त्र में वर्णन है, सब बता देते हैं। मैं तो स्वयं लिखती हूँ वह भी याद नहीं रहता। गुरुदेव तो वास्तव में अद्भूत हैं जैसे महापुरुष। गुप्तिनंदी नंदौड़ में गुरुदेव की वैयावृत्य करके आ रहे थे तब स्वयं बोल रहे थे गुरुदेव स्टील की बॉडी है। मैं सोचती हूँ गुरुदेव भी तीर्थंकर की तरह ही संहनन वाले हैं, दिव्य रूप है, सुपर कंप्यूटर माइण्ड हैं। उनकी हर क्रिया से हम सीख सकते हैं। भ्रमण से लेकर प्रत्येक क्रिया शिक्षा देती है। गुरुदेव 2006 में जब कॉलोनी आये मैंने स्वाध्याय से ज्ञान प्राप्त किया, तब से मैं, मेरा परिवार गुरु चरण व आशीर्वाद से धन्य हो गया है। मेरे पति कमल गुरुदेव के साथ तब भी भ्रमण में जाते थे और अभी भी जा रहे हैं वहाँ से प्राप्त गुरुदेव के ज्ञान को क्या खाना चाहिए, क्या नहीं, कैसे, कब, बेसन कम खाना आदि आचरण में लाने से उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है वह हम सबको बताते रहते हैं अतः बच्चे भी पत्ति वाली

चीजों के बाद दूध नहीं लेना, सीताफल खाने के बाद पानी नहीं पीना आदि छोटी-छोटी बातों के विशेष ध्यान रखते है।

आचार्य कनकनन्दी गुरुदेव हमें धवला, जयधवला, प्रवचनसार, क्षपणासार, लब्धिसार, समयसार जैसे उत्कृष्ट ग्रंथों के श्लोकों के गूढ़ रहस्य समझाते है वरना इतने बड़े ग्रंथों को हम जीवन में देख भी न पाये है, उनका अर्थ समझने का हमें कहाँ सौभाग्य प्राप्त होता। मेरी भावना है कि गुरुदेव पढ़ाते रहे और मैं सुनती ही रहूँ, गुरु के समवशरण में भूख-प्यास की बाधा रहती भी नहीं है परन्तु हमारा कहाँ पुण्य की हमें गुरुवाणी सुनने को मिले। हमारी अज्ञानता के कारण ही हम आचार्यश्री को सही समझ नहीं पाते हैं। उनके ज्ञान विनय को हम उनका घमण्ड मान लेते हैं। ज्ञान के विनय में यह गर्भित है कि हमें गुरु का नाम, ग्रंथ का विवरण देना ही चाहिए नहीं तो विनय तप में दोष लगेगा। बारह तपों में विनय अंतरंग तप है परन्तु यह क्या कैसे आचरण में लाना है हम कुछ नहीं जानते इसीलिए तो गुरु का अवर्णवाद करते हैं। गुरु साहित्य क्यों लिख रहे हैं हम तो साहित्य पढ़ने का समय नहीं, कौन इसे पढ़ेगा? ऐसा सोचना भी मिथ्यात्व व ज्ञानावरण कर्म के बंध का कारण है। क्योंकि दो-चार लाइनें लिखना भी हमारे लिए मुश्किल है तो गुरुदेव ने 250-300 ग्रंथ कैसे लिखे होंगे? हमारे पूर्व के आचार्य भी ऐसा ही सोचते तो क्या हमें अभी जो जिनवाणी (आगम) मिल रही है वह मिलती? धरसेनाचार्य ने श्रुत लुप्त न हो जाये इसीलिए तो पुष्पदंत व भूतबली आचार्य को बुलाकर ग्रंथों को लिपीबद्ध करने को कहा। उनका ही उपकार है, जो हमें कुछ ग्रंथ मिल पा रहे हैं अधिकतर ग्रंथ तो लुटेरों द्वारा जला दिये गये। इन कुछ ग्रंथों को भी हम समझ नहीं सकते हैं आचार्यश्री कनकनन्दी जैसे विरले संत ही इसे पढ़ाकर हमें श्लोकों के गूढ़ रहस्यों (अर्थों) को समझा रहे हैं। वह इतना बहुत पढ़ाते हैं परन्तु हमें याद कितना कम रहता है। गुरुदेव को महान् ग्रंथों का ज्ञान है वर्तमान ज्ञान-विज्ञान का भी ज्ञान है और उन्होंने जो पढ़ा है वह उन्हें याद भी है। तभी वह बड़े-बड़े ग्रंथों की समीक्षा कर पाते हैं। पुराने ग्रंथों में विज्ञान से भी आगे रहस्य व ज्ञान है। वह गुरुदेव ही समझ पाये व जोड़ पाये, सब आचार्य धर्म को जानते थे परन्तु विज्ञान में कहाँ, कैसे, किस प्रकार यह तथ्य है इसको कोई जोड़ नहीं पाया। गुरुदेव का उपकार है जो उन्होंने इतने बड़े ग्रंथों के श्लोकों का अर्थ, समीक्षा छोटी-छोटी पुस्तकों में की जिससे हम उन्हें आसानी से समझ व पढ़ सके। क्योंकि छोटी पुस्तकें

पढ़ने का समय नहीं मिलता तो बड़े ग्रंथ कहाँ पढ़ पायेंगे। भले हम न पढ़ सके परन्तु गुरुदेव लिख रहे है वह श्रेष्ठ है, उत्तम है, ऐसी अनुमोदना करनी चाहिए। कुछ लोग भी पढ़ेंगे तो वह अपने-आप को धन्य मानेंगे, पापों से बचेंगे, नैतिक व धार्मिक बनेंगे। मुनिनां अलौकिक वृत्ति मुनियों की सामान्य जनों से विपरीत ही वृत्ति होती है तभी तो वह अलौकिक हैं। मिथ्यादृष्टियों की तरह आचरण करेंगे तो फिर उनका संसार कम नहीं होगा। वह संसार मिटाने के लिए साधु बने हैं। हम संसारी प्राणी अनादि कालीन मिथ्यात्व के कारण साधु को भी हमारी तरह अर्थात् हमें पसंद आये वैसे बनाना चाहते हैं, वैसे प्रवचन चाहते हैं, वैसे आचरण चाहते हैं। साधु को भी गिराना चाहते हैं। साधु जो महान् आत्मा महात्मा होते हैं, वह बहुत कष्टदायक जीवन जीते हैं क्योंकि उन्हें कोई समझ नहीं पाते जैसे महात्मा गाँधी, ईसा मसीह, बुद्ध, महावीर, आदिनाथ, पार्श्वनाथ। गुरुदेव सबको छोटे-छोटे कामों के लिए धन्यवाद देते हैं।

ऐसे महान् वैश्विक युग प्रवर्तक गुरु के प्रति मैं अपनी विनय, श्रद्धा, कृतज्ञता व्यक्त करते हुए भावना भाती हूँ कि आप दीर्घ आयु होकर जिन धर्म के ज्ञान-विज्ञान की महत्ती प्रभावना करते हुए सर्व जीवों के लिए कल्याणकारी बने। ऐसी सद्भावना व्यक्त करती हूँ।

आपकी शिष्या
विजयलक्ष्मी जैन पत्नी श्री कमल कुमार जैन
ए-294, ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा
9413016687

आचार्य कनकनन्दी जी की विशेषताएँ

-मधुबाला गोवाड़िया (ग.पु.कॉ.)

''प्यासा हूँ मम वारि दो, दया करो महावीर
धीरे-धीरे पी सकूँ, तव चरणों का नीर''

इस पंचमकाल में आचार्य, उपाध्याय व साधु हमारे प्रेरक हैं। मैं गुरुदेव की उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ। आपका रत्नत्रय निरंतर विशुद्धि को प्राप्त हो। गुरुदेव निस्पृही, निराभिमानी हैं। उन्हें ढोंग, दिखावा, पाखण्ड बिल्कुल पसंद नहीं है। सरल स्वभावी, मृदु विचारों से ओतप्रोत हैं। आपकी कथनी व करनी में बिल्कुल अंतर नहीं है, जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश, बहती गंगा का पानी, चन्द्रमा की चाँदनी

का प्रयोग बिना भेदभाव के सभी प्राणी करते हैं उसी प्रकार आचार्य प्रभु के लिए कोई बड़ा, छोटा, गरीब, धनवान नहीं है। वे प्रत्येक प्राणी का हित चाहते हैं।

गुरुदेव को देश की बड़ी पीड़ा है, वे प्रत्येक क्षण चिंतवन करते हैं कि लोगों के विचार दूषित क्यों है, उल्टा क्यों सोचते हैं? गुरुदेव प्रवचन सार की विषय वस्तु का ज्ञान, नई-नई कविताएँ बनाकर सरल भाषा में हमें पढ़ाते हैं। गुरुदेव ने हमें विनय, सम्यग्ज्ञान, दीक्षा गुरु के समान शिक्षा गुरु पूज्य, सकारात्मक सोच, तथा मैं (आत्मा) के बारे में विस्तृत ज्ञान कराया, मैं अपने जीवन में आत्मसात् करूँगी।

द्वय आचार्य संघों का वात्सल्य-मिलन

-विजयलक्ष्मी

आचार्य कनकनन्दी व आचार्य उदारसागर जी का पुनर्वास कॉलोनी में मिलन हुआ। आचार्य द्वय का पाद-पक्षालन व पूजा हुई। विमलनाथ मंदिर में भगवान् की शांतिधारा की गई। मंत्रोच्चार उदारसागर जी ने किया। इसके बाद वैज्ञानिक धर्माचार्य कनकनन्दी द्वारा रचित 'पंच परमेष्ठी तेरे भक्त हम, तेरी भक्ति से बने भगवान्' से सुविज्ञसागर जी ने गुरुभक्ति की। इसके बाद उदारसागर जी ने प्रवचन में कहा कि साधुओं के दर्शन अनंत भवों के पुण्य से मिलते हैं, साधु चलते-फिरते तीर्थ हैं। साधु के दर्शन से सब विघ्न, बाधाएँ दूर होती हैं व कार्य में विजय प्राप्त होती है। आचार्य कनकनन्दी ने प्रवचन में कहा कि साधु जीवन्त धर्म है। जिनवाणी को गुरु ही समझा सकते हैं, शास्त्र बोलते नहीं मूर्ति बोलती नहीं, तीर्थ बोलते नहीं अतः संपूर्ण धर्म के केन्द्र बिन्दु साधु हैं। साधु वात्सल्य भावना से ओत-प्रोत होते हैं। एकन्द्रिय की रक्षा के लिए जो मिथ्यादृष्टि है, उनकी रक्षा के लिए पिच्छी रखते हैं, श्वेताम्बर मुखपट्टी बाँधते हैं तो फिर साधर्मी के प्रति तो वात्सल्य होना ही चाहिए। हर जीव के प्रति मित्रता ''सत्वेषु मैत्री, गुणेषु प्रमोदम्'' के भाव होना चाहिए। सज्जन से सज्जन के मिलने पर शरीर के 7 करोड़ रोम पुलकित हो जाते हैं। वाणी गद्गद् हो जाती है। गुरुदेव ने बताया कि सिद्ध बनने का उच्च लक्ष्य है तो फिर प्रेम, सौहार्द्र, वात्सल्य भाव अवश्य रखना चाहिए। गुरुदेव ने बताया कि साधु नवदेवता, पंच परमेष्ठी, दस धर्म, 16 भावना हैं। साधु साधना की प्रथम अवस्था है और उसका अंतिम लक्ष्य साध्य को पाना अरहंत सिद्ध बनना। साधु बनने के बाद ही अरहंत, सिद्ध पद प्राप्त हो सकता हैं

अतः सब धर्म का केन्द्र बिन्दु साधु है। पंच परमेष्ठी में दो परमेष्ठी नहीं हैं तीन परमेष्ठी आचार्य, उपाध्याय, साधु वर्तमान में उपलब्ध हैं। धर्म का सही पालन वही करते हैं। 'न धर्मो धार्मिकेविना' अतः धार्मिक श्रमणों बिना धर्म जीवित नहीं रह सकता, धर्म का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता, धर्म का मर्म समझ नहीं सकते। सम्यक् दर्शन व सम्यक् ज्ञान हो परन्तु सम्यक् चारित्र बिना मोक्ष मार्ग की पूर्णता नहीं होगी। मोक्ष मार्ग को पंथ-मतों में न बाँटकर लक्ष्य व गुणग्राही बनना चाहिए। गुरुदेव ने कहा उदारसागर जी यथा नाम तथा गुण है आचार्यश्री उदारसागर जी वात्सल्यमयी, उदारभावी, सरल स्वभावी हैं। साधुओं का वात्सल्य मिलन होते रहना चाहिए जिससे एक-दूसरे के ज्ञान, विचारों का आदान-प्रदान हो। समाज में एकता स्थापित हो।

मणिभद्र जैन का आचार्यश्री के लिए सेवा हेतु निवेदन पत्र

गुरुदेव के श्रीचरणों में मेरा कोटि-कोटि नमन! मैं कल उदयपुर जा रहा हूँ। मुझे आदेश देना गुरुदेव! जिससे मैं स्वयं को पुण्यशाली मान सकूँ। आप आदेश अवश्य देना और संघ में जो भी आवश्यकता हो वह पत्रवाहक के साथ लिखकर भेजना। मैं इसके साथ नन्दौड़ में हुए संघ, गुरु-शिष्य मिलन के फोटो भेज रहा हूँ। सब फोटो की तीन-तीन प्रतियाँ हैं।

मेरे आचार्य भगवन्! आप आदेश अवश्य करना। जो भी लाना हो वो मैं अवश्य ले आऊँगा। आचार्य भगवन्! पहली बार पत्र लिख रहा हूँ। मेरे से कोई गलती हुई हो तो क्षमा चाहता हूँ।

नमोऽस्तु आचार्य भगवन्
आपके आदेश की प्रतीक्षा में
मणिभद्र जैन (चितरी), दिनांक 22.11.2015

जिनवाणी चैनल (टी.वी.) में प्रसारित आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के साहित्यों का विवरण

वैज्ञानिक श्रमणाचार्य श्री कनकनन्दी जी गुरुदेव
वैश्विक व्यक्तित्व एवं कृतित्व

विश्व धरा पर प्राचीनता से लेकर आधुनिकता की समन्वय मूर्ति महान् आध्यात्मिक वैज्ञानिक, दार्शनिक, लेखक, महाकवि, समीक्षक व अभिप्रेरक आदि बहु विधायी प्रतिभा के जाज्ज्वल्यमान व्यक्तित्व जिनके कृतित्व से सारा वैश्विक परिवेश भी गौरवान्वित हुआ है।

आपने अब तक के अपने साधक जीवन का सम्यक् रीति से पालन व साधना करते हुए ज्ञान-विज्ञान के शोध-बोध करते हुए अब तक 250 से अधिक ग्रंथों का सृजन करके एक वैश्विक कीर्तिमान स्थापित किया है। आपने प्रायः 200 ग्रंथ गद्यात्मक व 50 ग्रंथ पद्यात्मक लिखकर माँ भारती के भाल को उन्नत किया है। आपके शोधपूर्ण ग्रंथों पर देश-विदेश के विश्वविद्यालयों से लेकर विश्व धर्म संसद तक, साहित्य कक्ष स्थापन के साथ-साथ आपके द्वारा शिक्षित वैज्ञानिक, चांसलर, प्रोफेसर्स, शिक्षाविद् जैसे अन्यान्य क्षेत्रों में कार्यरत शिष्यों के शोध निर्देशन में आपके विविध विषयक साहित्यों पर पीएच.डी., एम.फिल. व डी.लिट्. हो रहे हैं।

वैसे उपरोक्त समस्त कार्य गुरुदेव ख्याति-पूजा-लाभ व प्रसिद्धि से दूर रहकर ही कर रहे हैं तथापि कुछ शिष्य भक्तजन अपनी स्वेच्छा से गुरुदेव के इस वृहत् कृतित्व को ज्ञान-विज्ञान की प्रभावनार्थे स्वप्रेरणा से कर रहे हैं। राजस्थान के वागड़ अञ्चल की सागवाड़ा शहर के पुनर्वास कॉलोनी के विद्यार्थी शिक्षार्थी शिष्य भक्त श्रीमती विजयलक्ष्मी व पति श्री कमल जी गोदावत की भावना है, कि गुरुदेव के सृजित इन ग्रंथों का चैनल के माध्यम से आप दर्शकों को परिचय व दर्शन प्राप्त हो व आप इसका अध्ययन व शोध भी करें।

आचार्यश्री के ग्रंथों की सूची व फोटो आदि प्रकाशित कर रहे हैं। आचार्यश्री के उपरोक्त समस्त कार्य याचना-चंदा-चिट्ठा-प्रलोभन-दबाव बोली आदि विकृतियों से रहित होकर देश-विदेश के दिगम्बर, श्वेताम्बर, हिन्दू-ईसाई आदि भक्त शिष्यों के द्वारा स्वेच्छा से हो रहा है।

आचार्यश्री कनकनन्दी जी गुरुदेव के शोधपूर्ण साहित्य

I. जैन/(भारतीय) तथ्य जो आधुनिक विज्ञान से परे (ज्ञानधारा)

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	मूल्य
1.	ब्रह्माण्डीय-जैविक-भौतिक एवं रसायन विज्ञान	151
2.	अनंत शक्ति सम्पन्न परमाणु से लेकर परमात्मा तक	201
3.	करो साक्षात्कार यथार्थ सत्य का	50
4.	वैज्ञानिक आइंस्टीन के सिद्धांतों को पुनः परीक्षण की आवश्यकता	15
5.	ब्रह्माण्ड एवं प्रतिब्रह्माण्ड का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	15
6.	करो साक्षात्कार यथार्थ धर्म एवं भाव का	40
7.	विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मिक विकासवाद (I.Q. < E.Q. < S.Q.)	25
8.	ब्रह्माण्ड-काल-आकाश एवं जीव अनंत (लघु)	25
9.	ब्रह्माण्ड-काल-आकाश एवं जीव अनंत (वृहत्)	201
10.	सत्य परमेश्वर	75
11.	अनंत परम सत्य का समग्र उल्लेख तथा उपलब्धि असंभव है	101
12.	ब्रह्माण्ड के परम विचित्र जीव-मानव	401
13.	सूक्ष्म जीव विज्ञान से शुद्ध जीव विज्ञान	801
14.	विश्व प्रतिविश्व एवं श्याम विवरण	35
15.	परम विकास के उपाय-स्वाध्याय	101
16.	मानव मान की विकृतियों का अनुसंधान, प्रायोगिक व आध्यात्मिक दृष्टि से	401
17.	सर्वोच्च शाश्वतिक विकास आध्यात्मिक ज्ञानानन्द	201
18.	वैज्ञानिक डार्विन तथा अन्यान्य जीव विज्ञान अधिक असत्य आंशिक सत्य	101
19.	प्राचीन-परग्रही (ANCIENT-ALIENS)	101
20.	WHAT IS GOD PARTICLE!? (क्या है ईश्वरीय कण)	121

21.	विश्व का स्वरूप एवं विश्व की कार्य प्रणाली	201
22.	बन्ध एवं मोक्ष	101
23.	समता साधक मुमुक्ष श्रमण की साधना	301
24.	कौन है भगवान् व कैसे बनते है भगवान्	101
25.	अपरिग्रह परमो धर्म-परिग्रह परमो अधर्म	101

II. पद्यात्मक कृतियाँ (गीताञ्जली)

1.	बाल-आध्यात्मिक गीताञ्जली	31
2.	प्रौढ़-आध्यात्मिक गीताञ्जली	51
3.	जैन-आध्यात्मिक गीताञ्जली	31
4.	नैतिक-आध्यात्मिक गीताञ्जली	51
5.	प्रकृति (पर्यावरण) गीताञ्जली	51
6.	विविध गीताञ्जली	21
7.	आत्म कल्याण-विश्व कल्याण गीताञ्जली	51
8.	महान् आध्यात्मिक-वैज्ञानिक तीर्थंकरों के व्यक्तित्व-कृतित्व-शिक्षा गीताञ्जली	51
9.	समीक्षा गीताञ्जली	31
10.	विश्व शांति गीताञ्जली (गद्य-पद्यमय)	51
11.	सर्वोदयी गीताञ्जली (गद्य-पद्यमय)	51
12.	स्वास्थ्य गीताञ्जली	75
13.	आधुनिक गीताञ्जली	101
14.	सर्वोदय शिक्षा गीताञ्जली	101
15.	ब्रह्माण्डीय विज्ञान गीताञ्जली	151
16.	मानवीय गीताञ्जली	51
17.	नारी गीताञ्जली (गद्य-पद्यमय)	31
18.	अनुभव गीताञ्जली	101
19.	भारतीय गीताञ्जली	51
20.	जैन एकता एवं विश्व शांति गीताञ्जली	31
21.	धर्म गीताञ्जली	101

22.	सफलता गीताञ्जली	71
23.	चिन्तन-स्मरण गीताञ्जली	31
24.	कथा-आत्मकथा गीताञ्जली	51
25.	धर्म दर्शन गीताञ्जली	51
26.	सर्वोदय गीताञ्जली	51
27.	अनुशासन गीताञ्जली	101
28.	व्यक्तित्व-विकास गीताञ्जली	101
29.	जीवन प्रबन्ध गीताञ्जली	101
30.	उपलब्धि गीताञ्जली	101
31.	भावना गीताञ्जली	51
32.	मैं (अहम्) गीताञ्जली	51
33.	स्वाध्याय गीताञ्जली	51
34.	संस्कृति-विकृति गीताञ्जली	51
35.	आत्म चिन्तन गीताञ्जली	51
36.	विश्लेषण-आत्म विश्लेषण गीताञ्जली	51
37.	समस्या समाधान गीताञ्जली	51
38.	आदर्श जीवन गीताञ्जली	51
39.	रहस्य गीताञ्जली	51
40.	गुरु गीताञ्जली	101
41.	सत्य-साम्य सुख गीताञ्जली	51
42.	मैं (अहम्) ध्यान गीताञ्जली	51
43.	आध्यात्मिक रहस्य गीताञ्जली	51
44.	धर्म-अधर्म मीमांसा गीताञ्जली	51
45.	निन्दा पुराण गीताञ्जली	101
46.	आध्यात्म बोध गीताञ्जली	101
47.	पुण्य-पाप मीमांसा गीताञ्जली	51
48.	नैतिक-शिक्षा-सामान्य ज्ञान-अनुभव गीताञ्जली	101
49.	परम-स्वतंत्रता गीताञ्जली	81
50.	जैन धर्म रहस्य गीताञ्जली	101

51. शुद्ध-बुद्ध आनंद गीताञ्जली

III. आध्यात्मिक

52.	अनेकान्त सिद्धांत (द्वि.सं.)	41
53.	अहिंसामृतम् (द्वि.सं.)	25
54.	अनेकान्त के प्रकाश में मोक्षमार्ग	21
55.	अपुनरागमन पथः मोक्षमार्ग (तृ.सं.)	5
56.	आदर्श नागरिक की प्रायोगिक क्रियाएँ	10
57.	आहारदान से अभ्युदय (द्वि.सं.)	15
58.	उपवास का धार्मिक वैज्ञानिक विश्लेषण	25
59.	जीवन्त-धर्म सेवा धर्म (द्वि.सं.)	15
60.	दिगम्बर साधु का नगनत्व एवं केशलोंच (हिन्दी, मराठी, गुजराती, उर्दू-11 सं.)	10
61.	धर्म जैन धर्म तथा भ. महावीर	75
62.	बन्धु बन्धन के मूल (द्वि.सं.)	51
63.	विनय मोक्षद्वार (द्वि.सं.)	31
64.	विश्व धर्म सभा (समवसरण)	51
65.	क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)	35
66.	श्रमण संघ संहिता (द्वि.सं.)	61
67.	त्रैलोक्य पूज्य ब्रह्मचर्य (द्वि.सं.)	35
68.	सत्य परमेश्वर	07
69.	सनातन वैदिक धर्म में भी वर्णित है समाधिमरण	21
70.	मौन रहो या सत्य (हित-मित-प्रिय) कहो!	101
71.	दसण मूला धर्मो तहा संसार मूल हेतु मिच्छतं	25
72.	धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (भाग-1) स.सं.	15
73.	धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (भाग-2) स.सं.	20
74.	धर्म-दर्शन विज्ञान प्रवेशिका (भाग-3) स.सं.	30

IV. आध्यात्मिक मनोविज्ञान

1.	अतिमानवीय शक्ति (द्वि.सं.)	51
2.	क्रांति के अग्रदूत (द्वि.सं.) (तीर्थंकर का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण)	35
3.	कर्म का दार्शनिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.)	75
4.	ध्यान का वैज्ञानिक विश्लेषण (द्वि.सं.) (हिन्दी, अंग्रेजी)	51
5.	लेश्या मनोविज्ञान (द्वि.सं.)	21
6.	तत्त्व-चिंतन-सर्व धर्म समता से विश्व शांति	51
7.	कलिकाल में साधु क्यों बने?	75
8.	उत्सर्ग व अपवास स्वरूप मोक्षमार्ग	51

V. शिक्षा मनोविज्ञान

1.	आचार्य कनकनन्दी की दृष्टि में शिक्षा	11
2.	नैतिक शिक्षा एवं सामान्य ज्ञान	40
3.	सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (वृहत्)	401
4.	सर्वोदय शिक्षा मनोविज्ञान (लघु)	21
5.	सर्वोदय तथा संकीर्ण शिक्षा से स्वरूप एवं परिणाम	21

VI. शोध (धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक)

1.	अग्नि परीक्षा	21
2.	अनुभव चिन्तामणि	15
3.	उठो! जागो! प्राप्त करो! (हिन्दी, कन्नड़) (द्वि.सं.)	11
4.	जैन धर्मावलंबी संख्या और उपलब्धि (द्वि.सं.)	21
5.	जीवन विकास एवं विनाश के सूत्र	21
6.	जैन धर्मावलंबियों की दिशा-दशा-आशा	5
7.	जैन एकता एवं विश्व शांति (सं.द्वि.सं.)	5
8.	धार्मिक कुरीतियों का परिशोधन (द्वि.सं.)	10
9.	नग्न सत्य का दिग्दर्शन (द्वि.सं.) (सत्य को जानो! मानो! स्वीकारो)	25
10.	निकृष्टतम् स्वार्थी तथा क्रूरतम प्राणी : मनुष्य	21
11.	प्रथम शोध-बोध आविष्कार एवं प्रवक्ता	75
12.	प्राचीन भारत की 72 कलाएँ (द्वि.सं.)	21

13.	भारत को गारत एवं महान् भारत बनाने के सूत्र	15
14.	भारत के सर्वोदय के उपाय	5
15.	मानवीय निकृष्ट संघर्ष का इतिहास	10
16.	मेरा लक्ष्य साधना एवं अनुभव (आचार्यश्री की जीवनी)	10
17.	ये कैसे धर्मात्मा, निर्व्यसनी, राष्ट्रसेवी	21
18.	व्यसन का धार्मिक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण (च.सं.) (सप्त व्यसन)	151
19.	विज्ञान को भी अविज्ञात सत्य	20
20.	शाश्वत समस्याओं का समाधान (द्वि.सं.)	25
21.	शिक्षा, संस्कृति एवं नारी गरिमा	61
22.	संगठन के सूत्र (द्वि.सं.)	41
23.	संस्कार (हिन्दी, गुजराती, मराठी, कन्नड़) (15वाँ संस्करण)	10
24.	संस्कार (वृहत्)	50
25.	सत्यान्वेषी आचार्य कनकनन्दी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व	10
26.	संस्कृति की विकृति	10
27.	संस्कार और हम	35
28.	हिंसा की प्रतिक्रिया है : प्राकृतिक प्रकोपादि (द्वि.सं.)	35
29.	क्षमा वीरस्य भूषणम् (तृ.सं.)	21
30.	विभिन्न क्रम विकासवाद एवं परम आध्यात्मिक विकासवाद	201
31.	भारत की अंतरंग खोज	10
32.	विभिन्न भावात्मक प्रदूषण एवं भ्रष्टाचार : कारण तथा निवारण	41
33.	वर्तमान की आवश्यकता : धार्मिक उदारता न कि कट्टरता	15
34.	वैश्वीकरण, वैश्विक धर्म एवं विश्व शांति	21
35.	वैज्ञानिक आध्यात्मिक धर्मतीर्थ प्रवर्तन	51
36.	अभी की समस्याएँ-सभी के समाधान	21
37.	मानव धर्म : स्वरूप एवं परिणाम (सं.द्वि.सं.)	15
38.	विकास के चतुः आयाम सिद्धांत	51
39.	एकला चलो रे!	
40.	आधुनिक ज्ञान-विज्ञान से भी परे है प्राचीन जैन ग्रंथों का वर्णन	21
41.	सत्य गवेषणा	51

42. बोल्ड स्मार्ट एवं ब्यूटीफूल पर्सनल्टी अप टू डेट बनने का फार्मूला

VII. अनुवाद, टीका, समीक्षा (आध्यात्मिक विज्ञान)

1.	इष्टोपदेश (आध्यात्मिक मनोविज्ञान)	101
2.	पुरुषार्थसिद्धपुयाय (अहिंसा का विश्व स्वरूप)	201
3.	विश्व द्रव्य विज्ञान (द्रव्य संग्रह)	101
4.	स्वतंत्रता के सूत्र (मोक्षशास्त्र/तत्त्वार्थसूत्र) (द्वि.सं.)	201
5.	सत्यसाम्य सुखामृतम् (प्रवचनसार)	601
6.	आध्यात्मिक रहस्य के रहस्य	51
7.	भावसंग्रह (आध्यात्मिक क्रमविकास-गुणस्थान) (द्वि.सं.)	251

VIII. मीमांसा, समालोचना, संकलन

1.	कौन है विश्व का कर्त्ता-हर्त्ता-धर्त्ता?	21
2.	ज्वलंत शंकाओं का शीतल समाधान (द्वि.सं.)	75
3.	जिनार्चना पुण्य-1 (तृ.सं.)	75
4.	जिनार्चना पुण्य-2	21
5.	निमित्त उपादान मीमांसा (द्वि.सं.)	21
6.	पुण्य-पाप मीमांसा (द्वि.सं.)	35
7.	पूजा से मोक्ष-पुण्य-पाप भी	41
8.	भाग्य एवं पुरुषार्थ (हिन्दी, मराठी) (प.सं.)	15
9.	शोधपूर्ण ग्रंथ तथा ग्रंथकर्ता आचार्य कनकनन्दी	10
10.	अमृतत्व की उपलब्धि के हेतु समाधिमरण	40
11.	परोपदेश कुशल बहुतेरे	5
12.	विविध दीक्षा विधि	31
13.	विश्व हितकारी जैन धर्म का स्वरूप	10

IX. इतिहास

1.	ऋषभ पुत्र भरत से भारत (द्वि.सं.)	35
2.	धर्म प्रवर्तक 24 तीर्थंकर (द्वि.सं.)	21
3.	भारतीय आर्य कौन कहाँ से, कब से, कहाँ के?	50
4.	युग निर्माता भ. ऋषभदेव (द्वि.सं.)	61
5.	युग निर्माता भ. ऋषभदेव (पद्यानुवाद)	5

6. विश्व इतिहास 51

X. स्मारिका (वैज्ञानिक संगोष्ठी)

1. कर्म सिद्धांत और उसके वैज्ञानिक मनोविज्ञान एवं सामाजिक आयाम 60
2. शिक्षा-शोधक-स्मारिका 100
3. स्मारिका (स्वतंत्रता सूत्र में विज्ञान) 81
4. स्मारिका (स्वतंत्रता के सूत्र में विज्ञान) 51
5. जैन धर्म में विज्ञान 150
6. भारतीय संस्कृति में विश्व शांति और पर्यावरण सुरक्षा के सूत्र 20
7. मंथन (जैन दर्शन एवं विज्ञान)

XI. स्वप्न शकुन-भविष्य विज्ञान, मंत्र सामुद्रिक शास्त्र (शरीर से भविष्य ज्ञान)

1. सर्वांग विज्ञान की वैज्ञानिक गवेषणा (भाव-भाग्य तथा अंग विज्ञान) 251
2. भविष्य फल विज्ञान (द्वि.सं.) 301
3. मंत्र विज्ञान (द्वि.सं.) 35
4. शकुन-विज्ञान 75
5. स्वप्न विज्ञान (द्वि.सं.) 101

XII. स्वास्थ्य विज्ञान

1. समग्र स्वास्थ्य के उपाय : तपस्या 25
2. आदर्श विचार-विहार-आहार (द्वि.सं.) 75
3. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (भाग-1) (तृ.सं.) 50
4. धर्म एवं स्वास्थ्य विज्ञान (भाग-2) 21
5. शारीरिक-मानसिक-आध्यात्मिक स्वास्थ्य के विविध आयाम 201
6. जीवनोपयोगी सामान्य ज्ञान

XIII. प्रवचन

1. क्रांति दृष्टा प्रवचन 11
2. जीने की कला (स.द्वि.सं.) 25
3. भगवान् महावीर तथा उनका दिव्य संदेश 5
4. भारत को पुनः विश्वगुरु बनाने के लिए समग्र क्रांति चाहिए 11

5.	मनन एवं प्रवचन (द्वि.सं.)	10
6.	विश्व शांति के अमोद्य-उपाय (द्वि.सं.)	10
7.	विश्व धर्म के दश लक्षण	41
8.	व्यक्ति एवं समाज निर्माण के आद्य कर्त्तव्य	15
9.	शांति क्रांति के विश्व नेता बनने के उपाय	41
10.	समग्र क्रांति के उपाय	15
11.	भ्रष्टाचार-हिंसा-मुक्ति	25
12.	दिव्य उपदेश	51

XIV. डॉ. एन.एल. कछारा के साहित्य (संस्थान के सचिव)

1.	जैन कर्म सिद्धांत : आध्यात्म और विज्ञान	50
2.	समवसरण (आचार्य कनकनन्दी जी से भेंटवार्ता)	
3.	Join Doctrine of Karmo	35
4.	षटद्रव्य की वैज्ञानिक मीमांसा	30
5.	जैन दर्शन संबंधी अंग्रेजी में डॉक्यूमेंट्री फिल्म सी.डी.	

XV. आचार्यश्री के आगामी प्रकाशनाधीन ग्रंथ

1. संपूर्ण कला एवं वाणिज्य, न्याय, राजनीति, अर्थशास्त्र एवं समाज विज्ञान (नीतिवाक्यामृतम्) (शीघ्र प्रकाशनाधीन) : पृष्ठ प्राय : 1500

XVI. ताम्रपत्र में उत्कीर्ण ग्रंथ प्रकाशक एवं अर्थ सहयोग-प्रो. भारत कुमार जैन

1.	द्रव्यसंग्रह	8500
2.	समाधितंत्र	16000
3.	तत्त्वार्थसूत्र	52000
4.	इष्टोपदेश	
5.	भक्तामर स्त्रोत	
6.	कषाय पाहुड़-सिद्धांत सूत्र (कागज में भी छपे ग्रंथ)	

ताम्रपत्र के ग्रंथ लागत मूल्य से भी कम मूल्य में उपलब्ध है

ताम्रपत्र के ग्रंथ तथा आधी छूट में आचार्यश्री कनकनन्दी जी के ग्रंथ एवं प्राचीन ग्रंथ क्रय करने के लिए संपर्क करें।

7. महावीराष्टक

XVII. कैलेण्डर

1. जीवनोपयोगी दोहा
2. आ. कनकनन्दी श्रीसंघ तथा भक्त-शिष्यों द्वारा धर्म प्रचार
3. आ. कनकनन्दी की आध्यात्मिक यात्रा
4. आ. कनकनन्दी श्रीसंघ के नियम
5. आ. कनकनन्दी जी संबंधित व्यक्तित्व-कृतित्व एवं भविष्य

XVIII. कैलेण्डर

1. फोल्डर - 14 प्रकार के

XIX. कथा

1. कथा सौरभ
2. कथा परिजात
3. कथा सुमन मालिका
4. कथा पुष्पाञ्जली
5. कथा चिन्तामणि
6. कथा त्रिवेणी

XX. अंग्रेजी साहित्य

1. Fate and efforts (II. e.d.)
2. Leshya Psychology (II. e.d.)
3. Moral Education
4. Nakedness of digamber jain saints and keshlonch (II. e.d.)
5. Sanskars
6. Sculopr the Rishabhdeo
7. Phylosophy of Scientific Religion
8. What kind of Dharmatma (Piousman) these are
9. Spiritual Meditation

XXI. आचार्य कनकनन्दी का व्यक्तित्व व कृतित्व-आ. आस्थाश्री आचार्यश्री कनकनन्दी विधान आर्यिका आस्थाश्री राजश्री

1. गुरु अर्चना
रचनाकार-मुनिश्री गुप्तिनन्दी जी, आर्यिका राजश्री
आनंद की खोज
लेखिका-विद्याश्री सुषमा जैन, सहारनपुर
''सम्पर्क सूत्र एवं ग्रंथ प्राप्ति स्थल''
डॉ. नारायणलाल कछारा (सचिव)
55, रवीन्द्रनगर, उदयपुर (राज.)-313001
फोन नं. 0294-2491422, मो. 092144-60622
ई-मेल : nlkachhara@yahoo.com

विश्वकल्याणी जिनवाणी माँ

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : बंगला-उड़िया....., हाँ तुम बिलकुल ऐसे हो....., शत-शत वंदन....., कठिन-कठिन.....(मराठी).....)

जयतु जयतु माँ जिनवाणी...जयतु जयतु माँ श्रुतवाणी...
जयतु जयतु अनेकान्त वाणी...जयतु जयतु यथार्थ वाणी...(स्थायी)...
सर्वज्ञ देव से निसृत वाणी...गणधर द्वारा ग्रंथित वाणी...
सर्वभाषामयी श्री दिव्य वाणी...सर्व सत्य प्रकाशिनी वाणी...(1)...
अणु से लेकर ब्रह्माण्ड तक...आत्मा से परमात्मा तक...
मूर्तिक से लेकर अमूर्तिक तक...समस्त सत्य-तथ्य प्रकाशक...(2)...
तर्क-प्रमाण सहित वाणी...तर्कातीत सत्य संयुक्त वाणी...
तन-मन-इन्द्रिय कथक वाणी...तन-मन-अक्ष परे बखानी...(3)...
कल्पनातीत भी आप बखानी...इन्द्रिय-मनातीत आपकी वाणी...
मानव बुद्धि व यंत्रातीत वाणी...सार्वभौम परम सत्य बखानी...(4)...
अनंत प्रज्ञा से निसृत वाणी...अनंत सत्य-तथ्य बखानी...
समस्त दुःखों की निवृत्त वाणी...अनंत मोक्ष सुख प्राप्ति बखानी...(5)
आप ही जगत् पावनी माता...निष्पक्ष-उदार कथक माता...
विश्वकल्याणी हे! जगज्जननी...'कनकनन्दी' की ज्ञानदायिनी...(6)...

ग.पु. कॉलोनी, सागवाड़ा, दिनांक 29.04.2016, मध्याह्न 2.13

मेरी सम्यक् व्यवहार की प्रवृत्ति

(सही व्यवहार करने की शिक्षा मिलती है पंच समिति से)

-आचार्य कनकनन्दी

(चाल : छोटी-छोटी गैया.....)

पंच समिति से मुझे मिलती शिक्षा, सही व्यवहार की उत्तम शिक्षा।
आहार-विहार-निहार-भाषा की, उठाना-रखना की सम्यक् शिक्षा।। (1)

अहिंसक स्वास्थ्यकर आहार लेना, याचना दबाव बिन आहार लेना।
ध्यान-अध्ययन वैयावृत्ति निमित्त, आहार लेना केवल साधना निमित्त।। (2)

जीवों की रक्षा सहित विहार करना, स्वाध्याय तीर्थ वंदना स्वास्थ्य हेतु करना।
पैदल ही सम्यक् रीति से विहार करना, प्रासूक प्रदूषण रिक्त स्थल (क्षेत्र) में करना।। (3)

निहार (शौच) भी एकांत स्वच्छ स्थान में करना, ग्राम नगर से दूर स्थान में करना।
जलाशय बगीचा व रास्ता से दूर, अनिषेध निर्जन्तुक स्थान में करना।। (4)

भाषा समिति से मुझे शिक्षा मिलती, हित-मित-प्रिय कथन (की) शिक्षा मिलती।
निन्दा कलहकारी अपमान कारक, नहीं बोलना मुझे अप्रिय कारक।। (5)

असत्य प्रमादयुक्त भी नहीं बोलना, सत्य भी कलहकारी/(निन्दाकर) नहीं बोलना।
निन्दनीय दोषयुक्त भी नहीं बोलना, अप्रिय कठोर वचन भी नहीं बोलना।। (6)

असि मसि कृषि व्यापार शिल्प व सेवा (नौकरी), पंच पाप सप्त व्यसन की अनुमोदना।
अहितकर भीतिकर खेदकर कथन, नहीं करना मुझे वैर शोक कथन।। (7)

एकांतवास मौन में रहना चाहता हूँ, (अध्यापन) स्वाध्याय-प्रवचन भी कर रहा हूँ।
धर्मनाश क्रियाध्वंस सिद्धांत विप्लव में, बिना पूछे भी कथन/(लेखन) करता हूँ।। (8)

उपकरण उठाना रखना आदि में, उठना-बैठना व सोना आदि में।
शालीन व सम्यक् क्रिया करूँ सभी में, ऐसी शिक्षा मिले (मुझे) आदान निक्षेपण से।। (9)

बाह्य प्रवृत्ति करूँ मैं निवृत्ति हेतु, निस्पृह निराडम्बर समता के हेतु।
व्यर्थ काम (व) उद्दण्डता न करूँ कभी मैं, ऐसी महान् शिक्षा लहूँ समितियों से।। (10)

ग.पु.कॉ., सागवाड़ा, दिनांक 11.05.2016, प्रातः 7.46